इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ४ अंक ४ पौष मास कलियुगाब्द ५११३ जनवरी, २०१२

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्य:
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

इतिहास दृष्टि

प्राचीन आर्यों का इतिहास ज्ञान — प्रो० रामदेव — ३

संवीक्षण

स्थिति जनजातीय समुदाय की प्राचीन धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था — छेरिंग दोरजे — १२

ममलेश्वर महादेव मन्दिर ममेल — डॉ० भाग चन्द चौहान — १७

स्थान वृत्त

गुजरात में पाटन और सिद्धपुर — कौशिक मोदी — २१

राष्ट्र विभूति

संत वल्लुवर — राजेन्द्र सिंह गौड़ — २७

पर्व त्यौहार

ऐसे मनाई जाती है चम्बा में लोहड़ी — रमेश जसरोटिया — ३२

यात्रा वृत्त

बीकानेर में दो दिन — चेत राम गर्ग — ३६

गतिविधियां — ४२

सम्पादकीय

गीता का कर्मयोग

वैवस्वत *मन्वन्तर के अट्ठाइसवें द्वापर युग के अन्तिम चरण में महाभारत का ऐतिहासिक युद्ध हुआ है जिसका वर्णन महर्षि वेदव्यास ने महाभारत ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक किया है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के भीष्म पर्व में पच्चीसवें अध्याय से व्यालीसवें अध्याय तक कुरुक्षेत्र की रणभूमि के बीच भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का दिव्य संदेश दिया है। अट्ठारह अध्यायों में वर्णित उपदेश का यह कथानक श्रीमद्भगवद्गीता कहलाता है जो संक्षेप रूप में गीता के नाम से विख्यात है। गीता के उपदेश में अर्जुन के बहाने भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति अनिर्णय की स्थिति में खड़े मानव समुदाय का मार्गदर्शन किया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य कभी भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। इसलिए आसक्ति से रहित होकर कर्त्तव्य भावना से निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। इसी निष्काम कर्मयोग से मनुष्य परम लक्ष्य को प्राप्त करता है।*

राष्ट्र और समाज को नेतृत्व प्रदान करने वाले लोग यदि गीता का कल्याणमार्गी सदुपयोग अपने जीवन में उतारें तो समाज में व्याप्त किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार, दुराचार से मुक्ति सहज सम्भव है। इस सम्बन्ध में गीता का व्यावहारिक मार्गदर्शन है –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

अर्थात् जो व्यक्ति समाज में श्रेष्ठ एवं अग्रणी होते हैं, जो नेतृत्व प्रदान करते हैं, उनका जिस प्रकार का आचरण होता है, साधारण मनुष्य उन्हीं के अनुसार आचरण करने लगते हैं। वे अपने कर्मों से जो प्रमाण (आदर्श) स्थापित करते हैं, अन्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं। सन्मार्ग में बाधा खड़ी करना, कुछ लोगों का स्वभाव होता है। ऐसे ही स्वभाव के लोगों के ***एक संगठन ने रूस में साइबेरिया प्रान्त के टोम्सक शहर के न्यायालय में गीता के रूसी भाषा में अनुवादित संस्करण को प्रतिबन्धित करने की याचिका दायर की।*** *भारत में भी उस संगठन के अनुरूप ऐसी प्रवृत्ति के लोगों ने अपना स्वर गुनगुनाया। इसमें एक प्रशंसनीय पक्ष यह रहा कि भारत सरकार ने सकारात्मक दायित्व का निवर्हन करते हुए ऐसे प्रयासों पर रूस सरकार से अपनी आपत्ति व्यक्त की।* ***भारतीय संस्कृति के 'सत्यमेव जयते' जयघोष की प्रसांगिकता है अन्ततः सार्थक हुई। माननीय न्यायालय ने 28 दिसम्बर, 2011 को उपरोक्त याचिका अस्वीकृत करके गीता के सर्वजन उपयोगी महत्त्व की ओर विश्व समाज का ध्यान आकृष्ट किया है।***

एटम बम के निर्माता जर्मन के ओपन हाइमर ने कहा कि परमाणु विस्फोट के बाद उन्हें गीता की सत्यता का आभास हुआ है। ओपन हाइमर गीता के गहरे अध्येता थे। टॉल्सटॉय जैसे विश्व के महान् विद्वानों ने गीता को विश्व समाज के मार्गदर्शक की अनमोल रचना माना है। लोकमान्य तिलक ने जेल की कोठरी में गीता के दिव्य ज्ञान पर 'गीता रहस्य' नाम से एक प्रेरणादायी ग्रन्थ लिखा है। महात्मा गांधी जी का कहना है कि जीवन में जब-जब मुझे कोई संकट आता है तो मैं गीता पढ़ता हूँ और उसमें मुझे अपने संकट का समाधान मिल जाता है।

वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन और उस पर आचरण से ही वर्तमान निराशा भरा वातावरण, आशा के वायुमण्डल में परिवर्तित होगा और गीता के कर्मयोग द्वारा जगत के उज्जवल भविष्य का सृजन होगा।

विनीत,

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर

इतिहास दृष्टि

प्राचीन आर्यों का इतिहास ज्ञान

प्रो० रामदेव

दु:ख सागर से पार होने के जो कतिपय प्रधान साधन हैं उनमें से एक ऐतिहासिक ज्ञान भी है। अनेक शताब्दियों से इस भयंकर सागर के भंवर में पड़ी यह हमारी नौका डगमगा रही है। हमारे जो पूर्वज इस नौका को सुगति से चलाते थे वे तो परलोकवासी हो गए किन्तु आलसियों ने इस नौका संचालन की विधि उन से न सीखी। जब प्रचण्ड पवन बहने लगा, नौका अधिक डोलने लगी, अब आई तब गई जैसी दशा उत्पन्न हुई, तब हा हा कार आरम्भ हुआ। परन्तु इस क्रन्दन से क्या होता है ? सावधान होकर हमें चाहिए कि हम उन विधियों का पता लगाएं जिन्हें धारण कर हमारे पूर्वज इस नौका को सुगति से संचालित कर गए हैं और साथ ही ढूंढना चाहिए कि हम करोड़ों मनुष्यों में अब एक भी कर्णधार कहीं वर्तमान में है या नहीं जो इस दु:खसागर में डूबने से बचने के उपाय तथा शान्ति युक्त यात्रा की विधि हमें शीघ्र बताए।

यह एक स्वाभाविक बात है कि जब मनुष्य किसी महान् कार्य सम्पादन की चिन्ता में निमग्न होता है तो कार्य शैली के परिज्ञान के लिए चाहता है कि उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिले जिस ने उस प्रकार के कार्य पूर्ण करने में सफलता प्राप्त की है अथवा जिस ने अकृतकार्यता की दशा में भी अभीष्ट सिद्धि के लिए पूर्ण पुरुषार्थ किया हो। उक्त प्रकार के व्यक्तियों में से एक भी व्यक्ति यदि उसे मिल जाता है तो कार्यारम्भ से पूर्व वह उस के साथ विचार करता है और उस के अनुभवों को ध्यान से श्रवण करने लगता है। यह क्यों? क्या वह उस के साथ विचार करने में जो समय लगता है उसे वह अपने कार्यसम्पादन में नहीं लगा सकता? गम्भीर विचार से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का सम्मेलन और सम्भाषण भी कार्यसम्पादन के साधन ही हैं। जो मनुष्य किसी कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है, वह सफलता प्राप्ति के पूर्व पुरुषार्थ करते समय अनेक भूलें करता, अनेक कष्टदायक कठिनाईयों को लांघता, क्रमश: अनुभवी होता है और तब जिस प्रकार सफलता प्राप्त की जाती है उन सब विधियों का ज्ञाता बनता है। ऐसे अनुभवी पुरुष के साथ विचार कर लेने से नूतन कार्यकर्त्ता कृतकार्यता के कारणों और कार्य प्रणाली को जान कर आशावान् और उत्साहित होता, अनेक भूलों से बचता और कठिनाईयों को अल्पश्रम से लांघता हुआ सुगमता से उन्नति के मार्ग पर चलता है और इस प्रकार बहुत सा समय और श्रम जो कार्य से सर्वथा अपरिचित होने की अवस्था में नष्ट करता, उसे बचा कर स्वकार्य सिद्धि में लगाता है। कृतकार्य पुरुष के अभाव में यदि उसे वह पुरुष मिल जाता है तो सफलता की प्राप्ति के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करने पर भी स्वाभीष्ट सिद्धि से वंचित रहा हो तो उस की कठिनाइयों, भूलों और अपक्व अनुभवों से भी लाभ उठाता हुआ नूतन कार्यकर्ता अपनी सफलता के लिए अनेक नवीनोपाय सोचता और अनेक विध कष्टों से बचता है।

यह तो हुई एक मनुष्य की वार्ता। अब किसी ऐसे कार्य पर विचार कीजिए जिसे अनेक मनुष्य मिल कर ही सम्पादन कर सकते हों, जैसे कि खान का खोदना। खनिज विद्या से अपरिचित १०० मनुष्य मिल कर यदि एक स्वर्ण की खान को खोदने लगें तो कार्यविधि से अनभिज्ञ होने के कारण उन्हें अनेक कठिन काम उठाने पड़ेंगे परन्तु यदि उन्हें उन लोगों की कार्यविधि सविस्तार ज्ञात हो जाए, जिन्होंने इससे पूर्व इस कार्य को किया हो तो वे निश्शंक हो अपने कार्य को सुगमता से करने लगेंगे और यदि पूर्व कार्यकर्ता इन नूतन कार्यकर्ताओं के पूर्वज हों तो कार्य रीति की प्राप्ति के साथ ही इनका मस्तिष्क पैतृक उत्साह और हृदय आह्लाद से परिपूर्ण हो जायेगा, क्योंकि संसार का यह नियम है कि मनुष्य अपने पूर्वजों की सफलता का वृत्तान्त श्रवण कर उत्साहित होता है और उन का अनुकरण करने के लिये बद्ध परिकर हो जाता है। आप ही सोचें कि यदि आप के पिता अध्यापक धाराप्रवाह संस्कृत बोलते हों अथवा किसी विशेष विद्या में विशेष निपुण हों तो आप का मन कितना उत्साहित होता और अनुकरण की प्रबल इच्छा आप को किस प्रकार वशीभूत कर लेती है (परन्तु किसी अन्य के विषय में ऐसे वृत्तान्त श्रवण कर आप का हृदय उतना उद्वेलित नहीं होता), एवं यदि आप के पूर्वजों ने किसी स्थान विशेष में अपनी बुद्धिमता से सुकार्यों के सम्पादन में बराबर कीर्ति प्राप्त की हो उस स्थान के साथ तथा उस भूमि (देश) के साथ भी जहां ऐसे महापुरुषों ने जन्म ग्रहण किया हो आप का स्नेह हो जाता है। यही कारण है कि आज भी लक्षों मनुष्य अयोध्या, मथुरा प्रभृति के नामों से उत्साहित हो जाते हैं।

जो बात एक मनुष्य अथवा मनुष्यों के एक छोटे समूह के विषय में सत्य है वह एक मनुष्य महामण्डल व जाति के विषय में भी चरितार्थ हो सकती है, क्योंकि मनुष्य व्यक्तियों के समारोह से ही एक मनुष्य महासमूह व जाति बनती है। बहुत से कार्य ऐसे हैं जिन्हें सारी जाति मिलककर ही कर सकती है। यदि कोई सामाजिक कुरीतियाँ देश में हों तो सारी जाति को मिल कर ही सुधार का यत्न करना पड़ता है, क्योंकि यदि जाति का एक भाग कुरीतियों से पीड़ित हो तो शेष भाग भी सुखी नहीं रह सकता। यदि किसी देश में वाणिज्य करना बुरा समझा जाय तो इस का परिणाम यह होगा कि उस देश के निवासी सब के सब दरिद्री बन जायेंगे। अतएव आवश्यक है कि जाति अपने धार्मिक, सामाजिक तथा अन्यान्य प्रकार के नियमों को भली भांति सोच समझ कर बनावे और इन नियमों के निर्धारण के लिए भी उन सामाजिक तथा अन्यान्य प्रकार के नियमों पर भी विचार करले जिन का पालन उस के पूर्वज किया करते थे अर्थात् अपने पूर्वजों का इतिहास भली-भांति अध्ययन कर उक्त प्रकार के गम्भीर नियमों के निर्माणार्थ उद्यत हों ताकि उन्नति का मार्ग उस के लिये सुगम हो जाए।

इतिहास

इतिहास उस विद्या का नाम है जिस के अवलोकन से हमें किसी जाति के पूर्वजों के वृत्तान्त अर्थात् उन की उन्नति और अवनति, उन की चेष्टा और शिथिलता, उनकी भ्रान्ति और दक्षता एवं उन के सुखों और दुःखों का पूरा-पूरा ज्ञान हो।

भारतवर्षीय इतिहास

आर्य जाति की उन्नति और अवनति, उसकी चेष्टा और शिथिलता, उसकी भ्रान्ति और दक्षता, अनेक समय उनके नेताओं की मूर्खता तथा स्वार्थपरता के कारण उसके दु:खों को अन्यान्य समयों में बुद्धिमता तथा आत्मत्याग के कारण उस के सुखों का वृत्तान्त है।

यह निश्चित है कि हम भारतवासी जब भारतवर्ष का इतिहास पढ़ेंगे तो अपने पूर्वजों के महान् कार्यों का मनन कर उत्साहित होंगे, जातीय अभिमान उत्तेजित होगा तथा अपने कई पूर्वजों की भूलों को देख कर निश्चित पदों से उन्नति के मार्ग पर चलेंगे। कौन आर्य सन्तान है जो यह सुन कर प्रसन्न न होगा कि महाराज रामचंद्र ऐसे धर्मात्मा पुरुष थे कि सत्यप्रतिज्ञा पालनार्थ उन्होंने अयोध्या का राज्य परित्याग कर दिया, भीष्मपितामह ऐसे वीर थे कि बाणों की शय्या पर पड़े हुए भी शम दम का उपदेश कर सकते थे, प्राचीन आर्य ऐसे साहसी, उद्योगी तथा ईश्वर भक्त थे कि वेद की आज्ञा "***समुद्रं गच्छ स्वाहा अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा***" के पालनार्थ जलयान तथा आकाशयानों के द्वारा देश देशांतर की यात्रा करते और अपना धर्ममय राज्य सब के लिये सुखदाई बनाते थे। सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इंद्रद्युम्न, कुवलयाश्च, यौवनाश्व, वभ्रयश्व, अश्वपति, शशविंदु, हरिश्चंद्र, अम्बरीष, ननयुक्त, सूर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षेसन, मरुत्त, भरत प्रभुति, सार्वभौम महाव्रतों के प्रतिपादक ऐसे योद्धा तथा विज्ञ थे कि सम्पूर्ण पृथिवी के सुशासन और सुख के लिए सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य संस्थापित कर सकते थे, घोर महाभारत युद्ध के कारण बलहीन हो जाने पर भी आर्य इतने साहसी थे कि वे जावा, सुमात्रा आदि अनेक द्वीपों तथा अन्यान्य भू-भागों में भी अपने उपनिवेश बसा सकते थे, गुप्त वंश के राजा इतने पराक्रमी थे कि उन का राजनैतिक सम्बंध रोम और यूनान के साथ था। कौन ऐसा नीच आर्य होगा कि जिस के मन में इन वृत्तान्तों को पढ़ने से यह प्रबल इच्छा उत्पन्न न होगी कि वह अपने प्रियदेश को उन्नत करने का पुन: प्रयत्न करे। इसी प्रकार भारतसंतान जब यह पढ़ेंगे कि भारत में मुसलमानी राज्य केवल इस कारण संस्थापित हो सका कि कन्नौज के महाराज जयचन्द ने निज द्वेषवश महाराज पृथ्वी राज को पद दलित करने के लिये स्वदेश द्रोहिता की और नीच सिलावदी ने ठीक उस समय जब कि मुसलमानों के विरूद्ध आर्यों की जय होने वाली थी स्वदेशभक्त राणा सांगा का साथ छोड़ दिया, तो क्या उनका मन ईर्ष्या, द्वेष और अनैक्यता का दलन करने की चेष्टा न करेगा और उन के हृदय में स्वदेशभक्ति का प्रबल प्रवाह उद्वेलित न होगा ? होगा और अवश्य होगा, इसीलिए भारतवासियों को बड़े प्रेम और उत्साह के साथ अपने देश का इतिहास पढ़ना चाहिए और उस से लाभ उठाने का पूर्ण यत्न करना चाहिए। संसार में कोई भी सभ्य जाति ऐसी नहीं जिस के सुयोग्य पुत्र अपने इतिहास को सर्वप्रिय बनाने के अनेक यत्न न करते हों। क्या सभ्य देशों को सभ्यता प्रदान करने वाली जाति अपने अनेक पूर्वजों के महान् कार्यों का स्मरण कर के और अनेक पूर्वजों की भूलों को मनन कर के एक बार पुन: संसार की आचार्य नहीं बनेगी ? क्या यह पुण्य भूमि फिर से संसार को सच्ची सभ्यता का पथ न दिखलावेगी ? आशा तो यही पड़ती है कि जो जाति इतने क्लेशों से बच निकली है वह अपने इतिहास के द्वारा अपनी वास्तविक महत्ता को अनुभव करती हुई फिर उन्नति के शिखर पर पहुंचेगी जो इस का स्वत्व है।

हमें कतिपय पश्चिमी इतिहासवेत्ताओं के कथन की परीक्षा करनी है कि "प्राचीन आर्य ऐतिहासिक विद्या से अनभिज्ञ थे"। वास्तव में यदि यह लांछन ठीक हो तो हमें मानना पड़ेगा कि हमारे पूर्वज केवल अर्धसभ्य थे क्योंकि केवल दो ही अवस्थाओं में कोई जाति ऐतिहासिक ज्ञान से शून्य हो सकती है :—

(१) उस के पूर्वजों ने कोई ऐसे कार्य न किये हों जिनको उनकी सन्तति साभिमान स्मरण कर सके।

(२) उस के पूर्वजों ने अपनी सन्तति को ऐतिहासिक शिक्षा के लाभों से अवगत न कराकर उनको देशभक्ति के भावों को उत्तेजित करने की आवश्यकता से अनभिज्ञ रखा हो।

पहली अवस्था तो हो नहीं सकती, क्योंकि यह प्रख्यात है कि प्राचीन आर्यावर्त में रेखा गणित, ज्योतिष तथा पदार्थ विज्ञान महोन्नति को पहुंचे हुए थे, वैद्यक सम्बन्धी आश्चर्यजनक अन्वेषण हो चुके थे, अध्यात्म विद्या उन्नति के शिखर पर विराजमान थी, प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का आभ्यासिक प्रचार था तथा चक्रवर्ती साम्राज्य भी संस्थापित हो चुका था। अतएव यह सिद्ध नहीं हो सकता कि प्राचीन आर्यों के कार्य ऐसे न थे जो उन की संतान के उच्च भावों को न उत्तेजित करते और न उनकी उन्नति में सहायक हो न सकते। वास्तव में उनके कार्य तो केवल भारत ही नहीं प्रत्युत सर्व संसार को उन्नति के मार्ग पर चलने का आदेश करते हैं।

द्वितीयावस्था भी संघटित नहीं होती क्योंकि जब हम प्राचीन और नवीन संस्कृत साहित्य की आलोचना करते हैं तो उसे इतिहास के गुण वर्णन से भरा पाते हैं। स्थालीपुलाक न्याय से यहां पर थोड़े उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं :—

अथर्ववेद, १५, अ० १, सूक्त ६, मन्त्र १०, ११ तथा १२ में निम्नलिखित शिक्षा है :—

"स वृहतीं दिशमनुव्यचलत। तमितिहासाश्च पुराणंच गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद"

अर्थात् "महत्वाभिलाषी पुरुष जन (वृहतीम्) महत्व की ओर चलता है। तब इतिहास, पुराण गाथा और नाराशंसी (मनुष्य की प्रशंसा या स्तुति एवं वेदों के उन मंत्रों के समूह जिसमें अनेक राजाओं के दान आदि का प्रशंसात्मक वर्णन हो) उस के अनुगामी बन जाते हैं" इस बात को जो व्यक्ति जानता है, वह इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी का प्रिय धाम (वासस्थान) बन जाता है। (यह मन्त्र इतिहास विद्या का बीज है)

गृह्य सूत्र में लिखा है :—

"ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति"

अर्थात् ब्राह्मणों को इतिहास पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी कहते हैं। अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ जो ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम से प्रसिद्ध हैं उन में कई प्रकार के इतिहास विद्यमान हैं।

छान्दोग्योपनिषद् के सप्तम प्रपाठक में जहां महर्षि सनत्कुमार और ऋषि नारद का संवाद

है वहां सनत्कुमार के पूछने पर नारद ने निम्नलिखित प्रकार से बतलाया है कि उन्होंने क्या-क्या अध्ययन किया है :—

"सहो वाचग्वेंदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यांसर्पदेवजनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि"

अर्थात् हे भगवान्! मैंने ऋक, यजु, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण वेदार्थ प्रतिपादकग्रन्थ, पितृविद्या, राशि, दैव, निधि वाकोवाक्य, एकायनविद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्प देव जनविद्याओं का अध्ययन किया है। (इस उत्तर में इतिहास पुराण अर्थात् पुराकालीन इतिहास का नाम स्पष्ट आया है)

इसी प्रकरण में सनत्कुमार ने नारद को उपदेश दिया है :—

विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेद सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमम् .. ..

अर्थात् विज्ञान (सायंस) के द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराण का तत्त्व ज्ञात होता है। (इस कथन का तात्पर्य तो यह है कि किसी समय इतिहासविद्या भारत में ऐसी उन्नति को प्राप्त थी कि उस के कतिपय गूढ़ाशय पूर्ण ग्रन्थों को समझने के लिये विद्यार्थी को पहले विज्ञानवित् अर्थात् सायंस का ज्ञाता बनना पड़ता था)।

महाभाष्य व्याकरण के स्पप्रशाह्निक में लिखा है :—

महान् शब्दस्य प्रयोग विषयः ....

वाकोवाक्यमितिहासः .....

अर्थात् "शब्दप्रयोग" विषय बहुत बड़ा है ..... वाकोवाक्य इतिहासादि चतुष्षष्ठि (६४) कलाओं की गणना कराता हुआ एक कवि लिखता है :—

इतिहासागमाद्याश्च काव्यालंकार नाटकम् ....

अर्थात् इतिहास, वेद, काव्य, अलंकार, नाटक ..... आदि ६४ कलाएं हैं।

राजकुमार चन्द्रापीड को कौन-कौन सी विद्याएं पढ़ाई गई थीं, इस का वर्णन करता हुआ कवि वाण ग्रन्थ कादम्बरी में लिखता है :—

स (चन्द्रापीडः) महाभारत पुराणेतिहास रामायणेषु परं कौशलमवाप

अर्थात् वह राजकुमार महाभारत, इतिहास, पुराण तथा रामायण में बड़ा कुशल हो गया। राजा के वर्णन में कवि वाण ने कादम्बरी में लिखा है :—

स कदाचिख्यानकाख्यायिकेतिहास पुराणाकर्णनेन सुहृत्परिवृतो दिवसाननैषीत्

अर्थात् वह कभी-कभी प्रबन्ध, कहानियां, इतिहास तथा पुराणों को सुन कर मित्रों के साथ दिन व्यतीत करता था।

महाभारत में लिखा है :—

इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृंहयेत्

अर्थात् इतिहास तथा पुराण से वेदार्थ दृढ़ करना चाहिए। इस से पता लगता है कि प्राचीन आर्य ऐतिहासिक विज्ञानशास्त्र के इस नियम को भी भली भांति जानते थे कि जब तक किसी मनुष्य ने बहुत सी सांसारिक स्थूल घटनाओं के परस्पर सम्बन्धों को न समझा हो तब तक वह सूक्ष्म नियमों को ठीक अनुभव नहीं कर सकता क्योंकि स्वभावत: ज्ञान की गति स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर है। एक कवि लिखता है :—

धर्मार्थिकाममोक्षाणमुपदेशसमन्वितम् पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते

अर्थात् इतिहास वह विद्या है जिसमें प्राचीन बातों के वर्णन के साथ-साथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का उपदेश हो। इस से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में इतिहास न केवल घटनाओं का तिथि वार वर्णन ही करता था किन्तु साथ ही कारण कार्य की शृंखला द्वारा उन घटनाओं से जो शिक्षा मिलती थी, वह भी जतलाता था।

इन उदाहरणों से भली भांति विदित होता है कि प्राचीन आर्य इतिहास को एक प्रकार का विज्ञान और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति में सहायक मानते थे एवं इस की सहायता से अपने अनेक काव्यों को शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक बनाया करते थे। भला, जिस इतिहास की विद्यमानता की साक्षी नारद, सनत्कुमार, पतञ्जलि प्रभृति स्पष्ट शब्दों में दे रहे हैं, उस के ज्ञाता भारत में न हुए हों, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? एवं भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक साहित्य की अविद्यमानता कोई कैसे सिद्ध कर सकता है ?

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि प्राचीन आर्य लोग इतिहास के लाभों से परिचित थे तो इस समय कारण कार्य शृंखलायुक्त समस्त भारत का इतिहास क्यों नहीं मिलता, जिस में तिथिवार सब घटनाओं का सविस्तार वर्णन हो? मिले कैसे ? क्या भारत पर आक्रमण करने वाले मुसलमानों के साम्प्रदायिक पक्षपात से अब भी संसार अपरिचित है ? जिस समय मुसलमानी मत से असम्मत भारत सन्तान को वशीभूत करने की बलात् चेष्टा की जाती थी, जिस समय सहस्रों पुरुषों से उन की पत्नियां, भ्राताओं से भगिनियां छीनी जाती थीं, कभी कभी कतले आम अर्थात् सर्व जन बध की आज्ञा प्रचारित होती थी, उस समय भारतीय ग्रन्थ भला कैसे बच सकते थे। उदन्तपुरी का प्राचीन विश्वविद्यालय महाराज महिपाल के समय महोन्नति को प्राप्त था जिसमें अन्यान्य प्रकार के विद्यार्थियों के अतिरिक्त हीनयान सम्प्रदाय के १००० (एक सहस्र) बौद्ध साधु तथा महायान सम्प्रदाय के ५००० (पांच सहस्र) बौद्ध साधु शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, उस के महान् पुस्तकालय को जिस में ब्राह्मणों तथा बौद्धों के ग्रन्थ भरे पड़े थे, १२०२ ईसवी में बख़तियार ख़िलजी के सेनापति मुहम्मद बिनसीम ने जला दिया और उक्त साधुओं को मार डाला। (देखिये राय सरतचन्द्रदास बहादुर सी.आई.ई. का अंग्रेजी व्याख्यान जो साहित्य सभा कोलकाता में, सर रोपर लेथब्रिज एम.ए. के.सी.आई.ई. की प्रधानता में हुआ था और प्रयाग के मासिकपत्र हिन्दुस्तान रिविउ अंक मार्च १९०६ में छपा है, वहां लिखा है :—

The temple of Odantapuri vihara which is said to have been loftier than either of the two (Budha Gaya and Nalanda) contained a vast collection of Budhist and brahmanical works which, after the manner of the great Alexandrian library, was burnt under the orders of Mohamed Ben Sim General of Baktyar Khilji in A.D. 1202. (The

Hinudstan, Review, March 1906. P. 187.)

During the reign of the son of king Mahipal who was called Pal the Great i.e Mahapal, there were 1000 monks of the earlier school of Budhism called Hinayana & about 5000 monks of the Mahayana school at Odantapuri. The Pal Kings had established a monastic university at Odantapuri with a splendid library of Brahmanical and Budhistic works which was destroyed at the sack of the monastery and massacre of its monks by the Mohomedans in A.D. 1202. (The Hindustan Review. March 1906, P. 190).

अर्थात् उदन्तपुरी के विहार मन्दिर में (जिस के विषय में कहा जाता है कि वह बुद्धगया तथा नालन्दा के विहार मन्दिरों से भी ऊंचा था) ब्राह्मणों तथा बौद्धों के बनाए ग्रन्थों का एक बहुत बड़ा संकलन था जो कि अलेकज़ंड्रिया के महान् पुस्ताकालय की भांति १२०२ ईसवी में बखतियार ख़िलजी के सेनापति मुहम्मद बिनसीम की आज्ञानुसार जलाया गया (हिन्दुस्तान रिविउ, मार्च १९०६, पृष्ठ १७८)।

महाराज महिपाल के पुत्र महाराज महापाल के शासन के समय उदन्तपुरी में बौद्धों के पुराने पन्थ हीनयान सम्प्रदाय के एक सहस्र १००० साधु तथा नवीन पन्थ महायान सम्प्रदाय के ५००० पांच सहस्र साधु निवास करते थे। साधुओं के लाभार्थ पालवंश के महाराजाओं ने उदन्तपुरी में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया था जिस में एक सुन्दर और विशाल पुस्तकालय ब्राह्मणों तथा बौद्धों के ग्रन्थों से पूरित विद्यमान था। यह पुस्तकालय १२०२ ईसवी में (जब कि मुसलमानों ने उक्त साधु आश्रम पर चढ़ाई कर साधुओं को मार डाला) मुसलमानों के द्वारा जला दिया गया। (हिन्दुस्तान रिविऊ, मार्च, १९०६ पृ. १९०)

उन ग्रन्थों में अनेक ऐसे ग्रन्थों के नाम आते हैं जिनका इस समय कहीं भी पता नहीं लगता। इस का कारण क्या ? यही कि अनेक भारतीय ग्रन्थ मुसलमानी ईर्ष्याग्नि में भस्म हो गये। जब आर्य जाति पर यह विपत्ति पड़ी तो उस के नेताओं ने यह सोचा कि इतिहासादि साधारण ग्रन्थ तो फिर भी बन सकते हैं परन्तु यदि वेदों, उपनिषदों तथा दर्शनादि शास्त्रों का नाश हो गया तो न केवल आर्य जाति ही विनष्ट हो जायेगी प्रत्युत संसार मात्र की आत्मिक मानसिक तथा सामाजिक उन्नति में बाधा पड़ेगी। अतएव वह वेदोपनिषद दर्शनादि कतिपय ग्रन्थों को विशेष रूप से कण्ठस्थ करने लगे जिस से आर्यों के सैंकड़ों ग्रन्थ बच गये परन्तु सहस्रों परमोपयोगी ग्रन्थों की रक्षा न हो सकी, वेदों की प्राय: १००० एक सहस्र शाखाओं का नाश हो गया, धनुर्वेद, आयुर्वेद, शिल्पविद्या, इतिहासादि के सैंकड़ों ग्रन्थ विलुप्त हो गये। तथापि मानना पड़ेगा कि हमारे पूर्वजों ने उस घोर विपत्ति के समय बड़ी बुद्धिमता से काम किया। यदि आज इस गिरी हुई अवस्था में भारत सन्तान का कुछ मान्य यूरोप तथा अमेरिकादि देशों में है तो उस का कारण केवल यही है कि गौतम, कणाद, पतञ्जलि और व्यास पूजा सभ्य संसार में होती है।

परन्तु क्या सारी इतिहास की पुस्तकों का नाश हो गया ? नहीं, इस समय भी काश्मीर का इतिहास मिलता है जिस का नाम राजतरङ्गिणी है जिस के कर्ता कल्हण के विषय में डाक्टर स्टाइन नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक मानते हैं कि कल्हण इतिहास के सच्चे अर्थों को जानते थे और मिस्टर एचब्रूस आश्चर्य प्रकट करते हैं कि जिस समय यूरोप में वास्तविक ऐतिहासिक बुद्धि का विकास भी नहीं हुआ था उस समय भारत में कल्हण सरीखे इतिहासवेत्ता कैसे उत्पन्न हो गए! कल्हण का कार्य अद्भुत है और ईवोल्यूशन थियोरी अर्थात् विकास विचार के नियमों में आबद्ध नहीं होता।

सोचने की बात है कि महाराज विक्रमादित्य की बारहवीं शताब्दी में जब कि भारत का अध: पतन हो रहा था, कल्हण सरीखे इतिहासवेत्ता उत्पन्न हो सकते थे तो उस समय जब कि भारत

उन्नति के शिखर पर विराजमान था इस देश में कितने और कैसे-कैसे ऐतिहासिक विज्ञानी उत्पन्न हुए होंगे। कल्हण लिखते हैं कि राजतरंगिणी लिखने से पूर्व मैंने ११ (ग्यारह) ऐतिहासिकों की पुस्तकों का अवलोकन किया, परन्तु शोक! महाशोक! कि मुसलमानों की कृपा से उन में से एक का भी कहीं पता नहीं चलता।

प्राचीन आर्यों की तो कथा ही क्या है, उन की पतित सन्तति भी ऐतिहासिक घटनाओं को स्मृत व अंकित रखना आवश्यक समझती थी। जिस समय भारत में हाहाकार मचा हुआ था और आर्यों की लिखित पुस्तकों को मुसलमान नष्ट कर रहे थे उस समय देश के शेष भाट और चारण सामयिक ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी स्मृति में रखने लगे। यही कारण है कि सुप्रसिद्ध निष्पक्ष ऐतिहासिक टाड महाशय जब क्षत्रियों का इतिहास लिखने लगे तो उक्त चारण तथा भाटों से उन्हें तिथिवार उन सब ऐतिहासिक घटनाओं का ठीक-ठीक पता मिल गया जिन्हें उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास राजस्थान में अंकित कर रखा है। मराठों की शक्ति जब प्रकट हुई, मुसलमानी अत्याचार का सामना भारतीय सफलता के साथ करने लगे तब पुस्तकों के नाश का भय कुछ न्यून हुआ और मराठे, महाराज शिवाजी (सेवाजी) तथा पेशवाओं के राज्य समय का वृत्तान्त मराठी भाषा में लेखबद्ध करने लगे जो अब तक विद्यमान है।

जो पक्षपाती यह कहते हैं कि प्राचीन आर्यों को ऐतिहासिक विद्या का ज्ञान न था वह यह बतायें कि अब्बुलफ़जल ने जो भारत का इतिहास लिखा है उसकी सामग्री उसने कहां से एकत्रित की ? यदि ऐतिहासिक विद्या का ज्ञान ही न था तो महाराज अशोक अपने राज्य समय की घटनाओं को तिथि सहित पर्वतों की शिलाओं पर क्यों लिखवाया करते थे ? क्या समालोचक महाशयों ने कभी चीनी यात्री ह्यूनसांग के भारत भ्रमण वृत्तान्त को ध्यान पूर्वक पढ़ा है, ह्यूनसांग स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं (With respect to the records of events, each province has its own official for preserving them in writing. The records of these events in their full character is called Ni-lo-picha (Nilpita, blue deposite). In these records are mentioned good and evil events, with calamities and fortunate occurrences (Records of western countries, Book II, Literature; translated from the Chinese of Hiuen Tsiang of A.D. 629. English edition of 1906. P, 78.

अर्थात् घटनाओं को लेखबद्ध करने के लिये प्रत्येक प्रदेश में एक राजपुरुष होता था जिस का कार्य यह था कि घटनाओं का वृत्तान्त लिखता रहे। उनके लेखों का नाम "नीलोपिच" "नीलपित" (नीलपत्री) व "नीलकोष" था। इन लेखों में सुघटनाएं तथा दुर्घटनाएं सभी वर्णित होती थीं एवं देश की आपत्ति तथा सौभाग्य सूचक घटनाएं सब विद्यमान रहती थीं। (रेकर्ड्स आफ़ वेसटर्नकंट्रीज़, बुक सेकंड, लिटरेचर नामक पुस्तक पृ. ७८ जो चीनी यात्री ह्यूनसांग के ९२९ ईस्वी के लिखे चीनी ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद है जो कि १९०६ ई० में छापा गया था।)

आज कल भी यूरोपीय देशों में राज्य प्रबन्ध के लिये प्रत्येक विभाग से ब्लूवुक्स अर्थात् नील पत्रियां निकलती हैं जिन के आधार पर ही आाधुनिक ऐतिहासिक इतिहास लिखा करते हैं। भारतीय नीलपत्री तथा यूरोपीय ब्लूबुक्स इन दोनों नामों में जो समता है, वह वर्तमान ऐतिहासिकों के मन में नाना प्रकार की कल्पनाएं उत्पन्न कर रही है। क्या यह असंभव है कि यूरोपियनों ने ब्लूबुक्स लिखने की प्रणाली नीलपत्री के निर्माण से ही सीखी हो ?

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्ष के इतिहास में कोई समय ऐसा था जब कि कवि लोग अपनी काल्पनिक रचनाओं के लिये सामग्री भी प्रायः ऐतिहासिक पुस्तकों से लेते थे और इसी

कारण उन्हें इतिहास दर्शी भी बनना पड़ता था। क्षेमेन्द्र कृत काव्य कण्ठाभरण, प्रथम सन्धि के निम्नलिखित श्लोक से कवि के लिए इतिहास दर्शी बनने की आवश्यकता स्पष्ट ज्ञात होती है :—

पठेत् समस्तान् किल कालिदास कृतप्रबन्धानितिहासदर्शी।
कामाधिवास प्रथमोद्गमस्य रक्षेत्पुरस्तार्किकगन्धमुग्रम्।।

संस्कृत भाषा में ऐतिहासिक काव्यों की विद्यमानता सिद्ध कर रही है कि प्राचीन आर्यवर्त में इतिहास पर कई पुस्तकें लिखी गईं थीं, यदि नहीं लिखी गई थीं तो कवि कालिदास ने रघुवंश लिखने के लिए ऐतिहासिक सामग्री कहां से एकत्रित की थी ? और पुराणों में जो वंशावलियां दी हुई हैं, उनका ज्ञान पुराण के कर्ताओं को कहां से हुआ ? कई काव्यों के पढ़ने से बोध होता है कि एक समय इस देश के विद्यालयों में इतिहास के अनेक ग्रन्थ उपस्थित थे। हर्षचरित में प्रमाण है कि जब महाराज हर्ष का चित्त उदास हुआ करता था तो वह इतिहास सुना करते थे। कादम्बरी में लिखा है कि महाराज ने अपने पुत्र के लिये गुरुकुल खुलवाया और उस में भिन्न-भिन्न विद्याओं के साथ-साथ इतिहास का अध्यापक भी नियुक्त किया। यदि इतिहास था ही नहीं तो अध्यापक राजकुमार को यह विद्या कैसे पढ़ाते थे ? रामायण और महाभारत दो महान् ऐतिहासिक काव्य इस समय उपस्थित हैं। यद्यपि उनमें प्रक्षिप्त श्लोक बहुत हैं तथापि उन के विषयों के ऐतिहासिक होने में कोई सन्देह नहीं। रामायण के एक अलंकार युक्त पुस्तक होने और महाभारत से पीछे लिखे जाने के विषय में यूरोपीय ऐतिहासिकों ने जो नए-नए और विचित्र विचार घड़े हैं, वे निराधार हैं। यदि प्राचीन आर्य इतिहास लाभों को नहीं समझते थे तो बाल्मीकि और व्यास ने इतनी बड़ी पुस्तकों के लिखने का कष्ट क्यों उठाया? यूनानी इतिहासवेत्ता मेगस्थनीज अपने भारत निवास का वृत्तान्त लिखते हुए, कहते हैं कि "महाराज चन्द्रगुप्त के देश में भिन्न-भिन्न घटनाओं की वार्ता संग्रह करने के लिए कई राजपुरुष नियुक्त थे।" निश्चय कि इन्हीं घटनाओं के सार वृत्तान्त से इतिहास बनता होगा। इतिहास संगठन के विषय में इस से भी दृढ़तर प्रमाण महाराज अशोक का छठा शिलालेख है जिस में अंकित है कि जो कुछ घटना किसी नगर में हो, उसे पत्रीवेत्ता नामक राजपुरुष लेखबद्ध कर लेवे।

पूर्वोक्त प्रमाणों से यही परिणाम निकलता है कि प्राचीन आर्य ऐतिहासिक विज्ञान को जानते थे, उन्होंने इतिहास की कई पुस्तकें लिखीं जिनमें से बहुतेरी का मुसलमानी राज्य के समय नाश हो गया, तथापि जो पुस्तकें बची हुई हैं, वह प्राचीन आर्यों के ऐतिहासिक विज्ञान प्रदर्शन में काम दे रही हैं और सिद्ध करती हैं कि आधुनिक विज्ञानविद् इतिहास लिखने में जिस शैली का अवलम्बन करते हैं, वह विधि भी प्राचीन आर्य ऐतिहासिकों को ज्ञात थी।

संवीक्षण

स्पिति जनजातीय समुदाय की प्राचीन धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था

छेरिंग दोरजे

सातवीं शताब्दी पूर्व तक स्पिति क्षेत्र एक विस्तृत राज्य जङ जुङ का भाग रहा था। जङ जुङ राज्य पश्चिमी तिब्बत से बालतिस्तान (पाकिस्तान अधिकृत) तक फैला एक विस्तृत राज्य था। इसमें हिमाचल के कुछ क्षेत्र भी सम्मिलित थे। इस राज्य के तीन शासकीय प्रदेश थे। जिनको गो, फुग्स और वर कहा जाता था। स्पिति फुग्स के अन्तर्गत एक आंचल रहा होगा, क्योंकि किन्नौर के उपरली भूभाग पूह का प्राचीन नाम फुग्स है। जिसकी साक्षी पूह स्थित एक देवालय के प्रांगण में (सङ–थङ) में गढ़ा पाषाण स्तम्भ पर खुदा शब्द 'फुग्स' है। स्पिति और अप्पर किन्नौर के जनजाति समुदाय उस समय जङ जुङ भाषा की एक उप बोली का प्रयोग अपने दिनचर्या के लिये किया करते थे। जो आज के किन्नौरी और लाहौली उप बोलियों से मिलती थी। आज स्पिति और अप्पर किन्नौर के बाशिंदे तिब्बती भाषा की एक उप बोली 'भोटी' का प्रयोग करते हैं।

सातवीं शताब्दी में तिब्बती सम्राट स्रोङ–चन–गमपो ने एक सैनिक अभियान के अन्तर्गत जङ जुङ नरेश लिक–मिन–कया की हत्या कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। गुजरते समय के साथ–साथ जङ जुङ तिब्बती साम्राज्य का अभिन्न अंग बन गया। उसने अपनी भाषा जङ जुङ कद और प्राचीन धर्म 'बोन' को भी खो दिया और तिब्बती भाषा को अपना लिया। साथ ही भारतीय बौद्धधर्म, जो इस काल में ही तिब्बत पहुंचा था, को अपना लिया।

प्राचीन बोन धर्म का स्वरूप

बोन धर्म संसार के प्राचीनतम धर्मों में से एक है। जिसे हम ईरानी प्राचीन धर्म जोराष्ट्र (अतिशप्रस्त) और इज़रायली धर्म यहूद से तुलना कर सकते हैं। बोन धर्म का प्रवर्तक महात्मा शेन–रब–मिवो थे। कहा जाता है कि वह तगजिक नामी प्रदेश से जङ जुङ देश आए थे और यहीं उन्होंने अपने मत का प्रचार स्थानीय भाषा जङ जुङ में किया। तद्पश्चात् वह तिब्बत भी गए। तिब्बत में भी अपने मत का प्रचार तिब्बती भाषा में नहीं, अपितु जङ जुङ भाषा में किया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जङ जुङ भाषा को समझने वाले विस्तृत भूखण्ड में थे। जहां तिब्बत, जिसे संसार की छत का नाम दिया गया है, में भी इस भाषा को समझने और बोलने वाले लोग रहते थे। विद्वानों का मत है कि महात्मा शेन–रब–मिवो का मूल देश तगजिक आज की ताज़िकिस्तान हो सकता है। जहां उस समय प्राचीन ईरानी धर्म जोराष्ट्र का बोलबाला रहा था।

मूलरूप से बोन धर्म घुमन्तू जनजाति समुदायों का धर्म लगता है। इसमें बहुत सारे देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना की जाती है। प्रकृति के हर तत्व के विभिन्न देवी–देवता हैं। यह देवी देवता दो धारी तलवार के समान शक्ति का प्रयोग करते हैं। सयंमी मनुष्य के लिये बहुत ही सुव्यवहार कार्य करते हैं। उनके दुखों को दूर करते और कठिन समय में सहायता करते हैं। अधर्मी

और पापी मनुष्यों को हर प्रकार के दुखों के लिए दण्ड देते हैं। कई प्रकार की व्याधियों में फंसाते हैं। ग्राम की सामूहिक पूजा में सारे ग्रामवासी देवी-देवताओं के मन्दिर अथवा देहरों में जाकर अर्घ्य और नैवेद्या से पूजा करते तथा देवदार के पत्तों और वन की सुगन्धित वनस्पतियों का धूप देते हैं। भेड़-बकरियों को मारकर रक्त पूजन भी करते हैं। इस प्रथा को 'वारना' कहते हैं। ग्रामवासी सामूहिक पूजन में अनेक भेड़-बकरियों की बलि चढ़ाकर फसलों की पैदावार में वृद्धि, समय पर वर्षा, दूध और घी से परिपूर्ण होने की प्रार्थना, अपने कुल, ग्राम और क्षेत्र के देवताओं से करते हैं। इसका उत्तर भी तुरन्त ही 'देवगूर' अथवा देवदूत जिस पर देवात्मा प्रवेश कर देव-वाणी में उत्तर और आगामी वर्ष के वर्षफल आदि की घोषणायें भी करते। बोन धर्म में ग्रामीण विश्वासों और प्राकृतिक तत्वों में शक्ति निहित होने के मिश्रण को लेकर धर्म की कल्पना की गई है। देवी-देवताओं को मन्दिरों, जिसे सदक्युमची कहते हैं, में स्थापित किया जाता है। आरम्भ में देवी-देवताओं की मूर्तियां नहीं बनाई जाती थीं। केवल सदक्युमची के मध्य धूप आदि जलाने हेतु एक गर्त और स्तम्भों पर रंग बिरंगे कपड़ों के चितरे सजाए जाते थे। कुछ स्थानों में एक अनगढ़ा पाषाण गाढ़ दिया जाता था। परन्तु तिब्बत में बौद्ध धर्म के आगमन के पश्चात् मूर्तियां बननी आरम्भ हुईं। आज भी लाहौल के देवताओं की कोई मूर्ति नहीं है और न ही मलाणा के विख्यात देवता जमलू की ही मूर्ति स्थापित है। हां कुल्लू के अन्य स्थानों में जहां जमलू देवता के मन्दिर हैं वहां पर जमलू देवता के मोहरें बनाए गए हैं और रथ पर सजाकर इन्हें अन्य स्थानों में हारयान ले जाते हैं। इसी जमलू देवता का एक मन्दिर स्पिति में हंसां ग्राम में है। जहां उनकी मृण मूर्ति, तिब्बती मूर्ति कला की तर्ज़ पर बनाकर ऊंचे आसन पर स्थापित की गई है। स्पिति में जमलू देवता को 'डाला शगचे' के नाम से पुकारते हैं।

वर्तमान में स्पिति लाहौल स्पिति जिले का एक उपमण्डल है। सम्पूर्ण स्पिति घाटी हिमालय की जंस्कार पर्वत श्रेणी और बृहत हिमालयी क्षेणी के (Great Himalayan Range) मध्य, स्पिति नदी घाटी में स्थित है। स्पिति नदी का प्राचीन नाम लनी नदी है। यह नदी अप्पर किन्नौर के 'लियो' ग्राम के पास होकर बहती है, इसलिये इसे 'लियो' से ली नाम दे दिया हो। स्पिति घाटी संसार की उच्चतम् घाटियों में शुमार है। यहां कोङ मिग के साथ टशी गङ ग्राम, जिसकी ऊंचाई साढ़े चार हजार मीटर के लगभग है, के लोग जौ, मटर और आलू पैदा करते हैं। वृक्षों झाड़ियों के नाम पर यहां केवल मजनू, पहाड़ी सफेदा, भूज पत्र और छेरमङ झाड़ी के छिटपुट पौधे नदी और जल स्रोतों के निकट देखने को मिलते हैं। जंगली गुलाब की झाड़ियां सुन्दर लाल पुष्प के साथ जल स्त्रोतों के नज़दीक उगे हैं। पहाड़ी ढलानों में घास की पैदावार न के बराबर है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है जङ जुङ राज्य का विलय तिब्बत में होने के पश्चात् तिब्बती राजनैतिक प्रभाव के कारण दसवीं शताब्दी तक जङ जुङ भाषा का स्थान तिब्बती भाषा ने ले लिया था। नव प्रचारित भारतीय बौद्ध धर्म भी बोन धर्म के स्थान पर प्रभावी होता जा रहा था। इसका विशेष कारण तिब्बती भाषा में लिपि का प्रसार रहा होगा जिसे आठवीं शताब्दी में एक तिब्बती विद्वान थोनमी समभोट ने भारतीय देवनागरी लिपि का अनुसरण करते हुए अविष्कार किया था।

नवीं शताब्दी के मध्य में तिब्बत के राजा उदुम च़नपो (ख्री दरमा) या लङ दरमा की हत्या

कर दी थी। देश की बागडोर संभालने वाला कोई नामवर शक्ति सम्पन्न राजा न होने के कारण देश कई छोट-छोटे सामन्तों के अधीन हो गया था। राजधानी ल्यासा से ख्री दरमा की दूसरी रानी ने अपने राजकुमार नम दे ओद-स्रुङ (८४२—८७८ ई०) के साथ पश्चिम तिब्बत आकर राज्य संभाला। इस राज्य में लद्दाख, लाहौल,जंस्कर (रूदोग) आंगथङ गुगे, पुरेड स्पिति, किन्नौर आदि छोटे-छोटे प्रदेश शामिल थे।

ओद स्रुङ के तीन राजकुमार हुए। ज्येष्ठ का नाम रिगपा गोन था। उसने लद्दाख और रूदोग पर राज्य किया। मध्य राजकुमार टशी गोन था, उन्होंने जंस्कर, अप्पर लाहौल और स्पिति पर राज्य किया। सबसे छोटे राजकुमार का नाम दे चुग जोन था उसने बालाई जङ जुङ, पुरेङ और चादा जोङ पर अपना राज्य स्थापित कर, पुरेङ राज्य का नाम दिया। शायद स्पिति गुगे और जंस्कर राज्य के मध्य का भाग रहा होगा। इसलिये स्पिति का प्राचीन नाम 'चिदे' था जिस का जिक्र प्राचीन लालुङ सरेखङ मन्दिर के प्रशस्ति पत्र में किया गया है।?

खेती बाड़ी का आरम्भिक काल

तिब्बत में खेती बाड़ी का आरम्भिक काल तिब्बत के प्रथम राजा न्याठी च़न-पो के राज्यकाल दूसरी शताब्दी से माना जाता है। परन्तु जङ जुङ में इसके पश्चात् आरम्भ हुआ, ऐसा माना जाता है। जङ जुङ प्रदेश का अधिकतर भू-भाग अधिक ऊंचाई पर स्थित होने और घास के मैदान होने के कारण पशु-पालक घुमन्तु जाति के समुदाय ही बसे हुए थे। परन्तु घाटियों में जहां सिंचाई की सुविधा और तेज़ हवाओं की मार से कुछ सुरक्षित स्थानों पर, जैसे अपर सतलुज घाटी, स्पिति और लद्दाख में खेती भी आरम्भ हो गई थी।

खेती-बाड़ी सम्बन्धी अधिक उपयुक्त भूमि न होने के कारण स्पिति और जङ़ जुङ़ राज्य में एक सख्त आचार को लागू किया गया, जिसने पीछे सामाजिक व्यवस्था का रूप ले लिया था। आज जिसे हम स्पिति के सामाजिक व्यवस्था में चार वर्ग व्यवस्था देख रहे हैं। उसका प्रारम्भ खेती सम्बन्धी भू-कानून से ही हो गया था। यह व्यवस्थायें हैं: खङ् छेन (ज्येष्ठ गृह अथवा मूल गृह), खङ-छुङ (कनिष्ठ गृह अथवा छोटा घर), यिङ -छुङ (लघु गृह) तथा दुह-थुलपा (धुवांगृह या धुवां परवाज़)।

खङ -छेन एक ग्राम को बसाने से पूर्व जनता तथा शासक फैसला करती है कि यहां कितनी भूमि खेती-बाड़ी के लिये उपयुक्त मिल सकती है। सिंचाई के पानी की उचित व्यवस्था कैसे हो सकती है।

आसपास के वनों से कितनी झाड़ियां ईन्धन को मिल सकेंगी और किस तरह पहाड़ी ढलानों में घास उपलब्ध होगी जिसके आधार पर लोग भेड़ बकरियां, गाय आदि पाल सकेंगे। उपलब्ध भूमि को कुछ कुटुम्बों को बांट देते हैं। उनको खङ छेन अर्थात बड़ा घर या मूल गृह कहा जाता है। यदि उस नव बस्ती में केवल २० घरों के लिये खेती के लिये भूमि उपलब्ध हो तो वहां २१ घर बसाने की आज्ञा नहीं मिलती। वहां बसे खङ छेन वालों को वर्ष में लगभग दो मास समूहिक श्रम और स्थानीय अधिकारी के लिये कार्य करने पड़ते थे। इस व्यवस्था को सुचारू रूप

से चलाने के लिये तीन-तीन वर्षों के अन्तराल में अधिकारी की नियुक्ति ग्रामवासी स्वयं करते थे। यह सारे कार्य प्रत्येक गृह स्वामी को करने पड़ते थे। खङ-छेन की अचल सम्पति का बंटवारा नहीं हो सकता। उस भूमि और घर का कर्ता-धर्ता घर का बड़ा लड़का होगा। छोटे भाईयों को घर में बड़े भाई के कार्य में हाथ बंटाने का हक है। उससे भाग मांगने का अधिकर नहीं।

खङ-छुङ की उत्पति

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि प्रत्येक गृह स्वामी को लगभग दो मास सामूहिक कार्य और स्थानीय सरकार के कार्य अनिवार्य रूप में करने होते हैं। परन्तु घर का मुख्या जब साठ वर्ष का हो जाता है तो इसे हर प्रकार की सामूहिक और राज्य के अनिवार्य सेवाओं से मुक्त कर सेवा-निवृत्ति की भान्ति जीवन बिताने का अवसर प्रदान किया जाता है। अब गृह मुखिया अपने बड़े लड़के को घर का मुखिया अर्थात गृह स्वामी बनाकर स्वयं एक दो कमरों के कक्ष में अपनी पत्नी समेत शेष जीवन बिताता है। वह अपने खर्च के लिये एक दो खेत बड़े घर अर्थात खङछेन से चुनकर अपने लिये रखता है। कभी-कभी उनके साथ अविवाहित लड़कियां भी रहती हैं। इस व्यवस्था को खङ छुङ और छोटा घर कहा जाता है। स्पिति की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में यह सेवा निवृत्ति पद्धति एक अनुपम सामाजिक व्यवस्था है। सेवा-निवृत्ति काल में रह रहे लोगों की भूमि उनके मृत्यु के पश्चात् बड़े घर वाले दोबारा संभाल लेते हैं।

कालान्तर में यह सेवा-निवृत्ति व्यवस्था या खङ छुङ सामाजिक व्यवस्था में तबदीली आई। कुटुम्ब के कुछ छोटे भाई तो ज्येष्ठ भ्राता के घर में घर का सदस्य बन कर रहने लगे। सामाजिक व्यवस्था में बहुपति विवाह प्रथा होने से भाभी के साथ सम्बन्ध हो जाता था। परन्तु कुछ छोटे भाई अपने पिता के साथ खङ छुङ में रहने लगे। पिता और माता की मृत्यु के पश्चात् भी छोटे घर और खेती के दो चार भूमि, जो पिता ने अपने गुजारे के लिये चुनी थी, पर कब्ज़ा कर स्थाई रूप से खङ-छुङ को बसाकर रहने लगे। हां इनमें से कुछ भाई पास के और तिब्बत के महान बौद्ध विहारों में जाकर बौद्ध भिक्षु बनकर रहते हैं। इस प्रकार खङ-छुङ व्यवस्था एक स्थाई सामाजिक सम्भाग बन गया। अब खङ छेङ वालां के साथ कभी-कभी टकराव भी होने लगा। खङ-छुङ वालों को भूमि नौतोड़ या फालतू सिंचाई लेने का अधिकार नहीं दिया गया। क्योंकि वह सामूहिक और राज्य के कार्य में योगदान नहीं देते थे। अब हर ग्राम में बड़े घर के साथ छोटे घर भी स्थाई रूप से दिखाई देने लगे। इस प्रकार स्पिति की प्राचीन व्यवस्था में दो समुदाय खङ छेन और खङ छुन ने स्थाई रूप धारण कर लिया। फिर कुछ काल के पश्चात खङ छुन के कुछ वृद्ध सदस्य वहां से भी अलग रहने लगे और यह तीसरे दर्जे की सामाजिक व्यवस्था पैदा हो गई। जिसे यिङ छुङ अर्थात लघु घर का नाम दिया गया। लघु घर के पास एक ही खेत और एक छोटा मकान जायदाद के नाम पर रहता है। ये स्पिति से बाहर रामपुर, किन्नौर और कुल्लू में मेहनत मज़दूरी करके ज़िन्दगी गुजार देते हैं। अब और समय के गुज़रने के पश्चात् फिर यिङ छुङ (लघु घर) भी अलग होकर वहां के सदस्य स्पिति से बाहर जाकर मेहनत मज़दूरी करके पेट पालते रहे हैं। वापिस स्पिति आकर यह स्थायी घर बनाकर समय बिताते हैं। उन्हें दुदथुलपा या दुदथोनपा कहते हैं, जिसका अर्थ है केवल आग जलाकर खाना पकाकर धुंआ छोड़ना। संक्षिप्त में कहें तो धुआं छोड़ने वाला कहा जाता है।

दुदथुलपा के पास कृषि योग्य भूमि नहीं होती है। केवल सिर छिपाने के लिये छत्त ही रहती है। इस प्रकार समय के करवट के साथ-साथ चार प्रकार की सामाजिक व्यवस्था स्पिति में प्रचलित हुई। आज भी न्यूनाधिक रूप में स्पिति के सामाजिक परिवेश को इन चार भागों में बंटा हुआ देख सकते हैं।

प्राचीन स्पिति में मवेशियों की बीमा पद्धति

प्राय: समस्त जङ जुङ राज्य और स्पिति में जानवरों के मरने के पश्चात् एक प्रकार के सामाजिक बीमा का प्रबन्ध होता था। यदि कोई भेड़-बकरी आदि मर जाये या मांस खोर जंगली जानवर मारकर खा ले तो मरे हुए जानवरों के मांस को प्रत्येक ग्राम वासियों को बांट दिया जाता था और प्रत्येक ग्राम वासी उस मांस के टुकड़े के बदले में कुछ अनाज मरे जानवर के मालिक को देते थे ताकि वे नया जानवर खरीद सके।

मांस भक्षी जंगली जानवरों भेड़िये और ई (Linx) को शिकारी मारते थे और मारे गये जानवर की खाल और सिर को ग्राम में लाकर प्रदर्शित किया करते थे। क्योंकि ये मांस भक्षी जंगली जानवर ग्राम वासियों के पालतू जानवरों का शिकार किया करते थे। इसलिए इनके मारे जाने पर लोग प्रसन्न होकर शिकारी को कुछ अनाज भेंट स्वरूप दिया करते थे। इस प्रकार शिकारी आगे भी इन मांस भक्षी जंगली जानवरों को मारते रहते थे। ये प्रथा प्राय: घुमन्तू पशु पालकों में प्रचलित थी।

जैसा कि पहले कहा गया है कि स्पिति और जङ जुङ राज्य का प्राचीन धर्म बोन था। भारतीय बौद्ध धर्म का प्रचार आठवीं शताब्दी में तिब्बत में हुआ है और लगभग २०० वर्षों के भीतर समूचे तिब्बत में बौद्ध धर्म का बोलवाला हो गया। इसके फलस्वरूप स्पिति में भी बोन धर्म के स्थान पर बौद्ध धर्म ने जड़ें मज़बूत कर लीं। दसवीं शताब्दी में स्पिति और गुगे क्षेत्र के महान् अनुवादक रिनचेन जङपो ने बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया और गुगे और स्पिति क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रचार भी किया। दूरस्थ स्थानों तक बुद्ध धर्म का प्रचार हुआ। महान् अनुवादक रिनचेन जङपो ने कुछ बोन देवी देवताओं को तिब्बती बौद्ध देवी देवताओं की श्रेणी में मान्यता दी। उनके बोन खानदान और बोन समय की कुलज देवी वि-ञ-मिन का तिब्बतीकरण कर दोरजे छिनमां में बदलकर उसे ताबो महा विहार की रक्षक देवी बना दिया। समूचे पश्चिमी हिमालय के बौद्ध मन्दिरों में भी इस देवी को रक्षक देवी का दर्जा देकर पूजा-अर्चना आरम्भ की गई।

स्पिति के कुछ निवासी प्राचीन काल में कुल्लू के गौजां और बटार ग्राम में आकर बस गये। आज भी इन दो ग्रामों में स्पिति के वंशज रहते हैं। स्पिति से आते समय इन ग्राम वासियों ने अपनी कुल देवी दोरजे छिनमो साथ लाया और उनकी स्थापना कुल्लू में की। आज सैंकड़ों वर्षों के पश्चात दोरजे छिनमों का कुल्लुवीकरण हो गया और इसका नाम दोचा-मोचा हो गया है।

स्पिति में आज तिब्बती बौद्ध धर्म के गेलुप्पा (साक्यापा) और निगमापा के निकाय के बौद्ध विहार स्थापित हैं।

ग्राम बारीतुन्नी
जिला कुल्लू हि०प्र०

ममलेश्वर महादेव मन्दिर ममेल

डॉ. भाग चन्द चौहान

हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिला का करसोग क्षेत्र प्राचीन काल से धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। यहां पर अनेक मन्दिर व प्राचीन परम्पराओं से जुड़े कई मेले-त्यौहार स्थानीय सांस्कृतिक रंग में भारत की सनातन संस्कृति एवं पुरातत्त्वविदों के आकर्षण रहे हैं। उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में मन्दिरों व संस्कृति एवं परम्पराओं से जुड़े मेलों व त्यौहारों का इतिहास मुख्यत: केवल लोक किंवदन्तिओं के माध्यम से ही प्राप्त हो पाता है।

ममलेश्वर महादेव ममेल व कामाक्षा मन्दिर काओ करसोग क्षेत्र के पौराणिक मन्दिरों में से

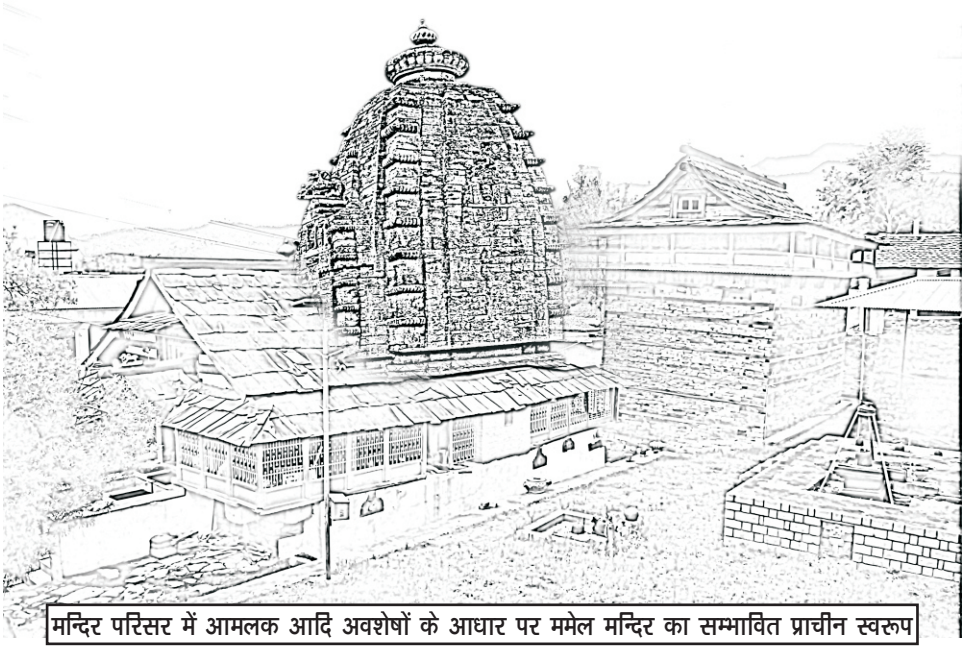

मन्दिर परिसर में आमलक आदि अवशेषों के आधार पर ममेल मन्दिर का सम्भावित प्राचीन स्वरूप

जाने जाते हैं। इन मन्दिरों में रखी पुरानी मूर्तियाँ, आमलक, स्तम्भ इत्यादि के अतिरिक्त गर्भ-गृह में लिखे शब्द व पंक्तियों की लिपियाँ तथा मन्दिर निर्माण की शैलियों को इतिहास लेखन में अभी तक तथ्यों के रूप में प्राय: नहीं लिया गया है।

किम्वदन्तियों के अनुसार ममेल मन्दिर का अस्तित्व अति प्राचीन भृगु-ऋषि के काल सत्युग यानि कि लाखों वर्ष पुराना है। माना जाता है कि एक ममलेशा नामक किन्नर-कन्या का

परिवार किन्नर कैलाश में भू-स्खलन आने से नष्ट हो गया। सुरक्षित ममलेशा संयोगवश इस क्षेत्र में आ पहुंची। यहां भृगु-ऋषि को तपस्या में लीन देखकर रूक गई ओर उनके समीप आसीन हो गई। ऋषि ने उसे वहां से चले जाने को कहा। लेकिन ममलेशा ने भू-स्खलन में अपने पूरे परिवार के नष्ट हो जाने का वृतांत ऋषि को सुनाया और उसे वहां रहने की अनुमति मिल गई। ममलेशा के रूप लावण्य व प्रेम पाश से भृगु ऋषि व ममलेशा के सम्बन्धों से यहां विमल और आमूल्य नाम के दो सपुत्र पैदा हुए। माना जाता है कि करसोग घाटी में स्थित कल-कल बहती दो नदियाँ उसी काल से सम्बन्ध रखती हैं और दोनों पुत्रों के नाम से ही इनका नाम इमला व विमला पड़ा। भृगु ऋषि के पश्चात् मातृ-वध श्राप से ग्रसित श्री परशुराम भी प्रायश्चित हेतु इस पवित्र स्थल में शिव-आराधना में कई वर्षों तक लीन रहे।

ममलेश्वर महादेव का अर्वाचीन स्वरूप

कहा जाता है कि अज्ञात वास के दौरान पाण्डवों ने भी इस पवित्र शिव नगरी में अपनी पत्नी द्रौपदी और माँ कुन्ती सहित कुछ समय गुजारा था। मन्दिर का जीर्णोद्वार पांडवों द्वारा द्वापर युग में हुआ है तथा यहां पर स्थापित अनेक शिवलिंग भी पांडवों का कार्य माना जाता है। उस काल में स्थापित शिवलिंग कुल अस्सी (८०) बताए जाते हैं जिनमें अब अधिकतर दबे पड़े हैं। उल्लेखनीय है कि १९९० के दशक में मन्दिर परिसर में हुई खुदाई में कई शिवलिंग बाहर निकले हैं। करसोग का प्राचीन नाम 'चक्रानगरी' था व वर्तमान नाम 'कर + शोक' शब्दों के मेल से बना है जो द्वापर युग में पांडवों के आगमन से ही जुड़ा माना जाता है। कहते हैं नरभक्षी राक्षस 'वकासुर' के भीम द्वारा वध के पश्चात् ही इस घाटी का नाम 'करशोक' पड़ा जो कालान्तर में अपभ्रंश होकर 'करसोग' हुआ। इसी तरह ममलेशा किन्नर वाला के नाम से शिवस्थल का नाम ममेल पड़ा व

मन्दिर का ममलेश्वर महादेव प्रचलित हुआ।

किंवदन्तिओं अनुसार मन्दिर में स्थापित गर्भगृह की अष्टधातु की मूर्ति रावण द्वारा आग्रह के उपरान्त भेजी गई है। मन्दिर में एक लगभग २५० ग्राम गेहूँ का दाना है जो सत्युग का माना जाता है। इसके अतिरिक्त एक भेखल का ढोल है जो अति प्राचीन है। प्रवेशद्वार के दाईं ओर एक अखण्ड धूना है जो द्वापर युग से चला आ रहा है।

उपरोक्त वर्णित इतिहास की वर्तमान स्थिति को इन तथ्यों पर आधारित, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुन: अवलोकन किया गया तो कुछ निष्कर्ष इस प्रकार समक्ष आए ...

मन्दिर परिसर में पड़ी मूर्तियों को शिल्प के अनुसार कलाविदों द्वारा दी गई काल स्थिति ९वीं सदी से प्राचीन नहीं है। किम्वदन्तियों के आधार पर मन्दिर निर्माण ५००० वर्ष से पूर्व पांडव काल में हुआ है। पांडवों का इस क्षेत्र में आना व राक्षस वध असत्य सिद्ध नहीं होता है। सम्भवत: मन्दिर का निर्माण यहां पाण्डव काल में भी हुआ, लेकिन यह तय है कि मन्दिर का वर्तमान ढाँचा पाण्डव काल का नहीं हो सकता है।

मन्दिर में पड़े आमलक, दो विभिन्न शैलियों की मूर्तियों तथा अन्य अवशेष इनका सम्बन्ध सूर्यनारायण मन्दिर नीरथ तथा दत्तात्रेय मन्दिर दत्तनगर व निरमण्ड के दक्षिणेश्वर मन्दिर के साथ से जोड़ते हैं। काओं, ममेल, नीरथ, दत्तनगर, निरमण्ड के मन्दिरों की स्थिति व प्राचीन अवशेषों का अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए, तो कुछ इस प्रकार के निष्कर्ष सामने आते हैं :

१. हिमालय के इस क्षेत्र में १४०० ई., १५५५ ई., १८०३ ई., १९०५ ई., १९९१ ई. तथा १९९९ ई. में भूकम्प के जोरदार झटके आए हैं जिनसे भारी जानमाल की क्षति हुई है।

२. कहा जाता है कि काओ, ममेल व दत्तनगर के प्राचीन पाषाण मन्दिर १४०० ई. व १५५५ ई. के भूकम्प के झटकों से तहस-नहस हुए। इस तरह काओ व ममेल के मन्दिरों के वर्तमान ढांचे ५००-६०० वर्ष से ज्यादा प्राचीन नहीं है।

३. ममेल मन्दिर परिसर में रखे प्राचीन पांच नन्दी, चार-पांच छोटे-बड़े आमलक अगर समकालीन हैं तो एक ही स्थान पर कई मन्दिर होने का संकेत देते हैं। इसी तरह यहां विद्यमान ११ विष्णु, ८ सूर्यनारायण, ४ गणेश व ४ महिषासुर मर्दिनी की मूर्तियां यदि समकालीन हैं तो यहां एक ही स्थान पर कई विभिन्न प्रकार के मन्दिर होने का संकेत मिलता है :

ममलेश्वर मन्दिर परिसर में पृथ्वी की आकृति (गेंद गोला)

४. देवालय के स्थानों में यदि खुदाई की जाए तो कई ऐतिहासिक तथ्य उजागर हो सकते हैं। उदाहरण के लिए ममेल शिव मन्दिर में पृथ्वी के दो गोले फुटबाल के आकार के रखे हैं, जबकि वराह भगवान की एक ही मूर्ति विद्यमान है। अत: दूसरी या तो नष्ट हो गई है या फिर जमीन के अन्दर दबी पड़ी है। पृथ्वी के प्रतीक इन पत्थर के गोलों को 'गेंद गोला' कहते हैं। इन्हें शिव जी की गेंद भी कहा जाता है। यहां लोकमानस में पृथ्वी ही शिव जी की गेंद मानी गई है। इसलिए शिव जी की गेंद रूप में ये गेंद गोला कहलाते हैं। इन गेंद गोलों से यह सिद्ध होता है कि भारतीय परम्परा में ऋषि-मुनियों को सौर मण्डल का पूरा ज्ञान था। वे जानते थे कि पृथ्वी गोल है। लोक ज्ञान में भी जन-साधारण को इसकी पूरी जानकारी थी।

५. निष्कर्ष के अनुसार ममेल शिव-मन्दिर का जीर्णोद्धार तो कई बार हुआ ही है जिसमें निर्माण शैलियां भी बदली हैं। हालांकि यह स्थल अति प्राचीन हो सकता है जैसा कि किंवदन्तियां व लोक कथाओं में सुना जाता है।

६. मन्दिर में मूर्तियों या दूसरे प्राचीन अवशेषों को ध्यान से देखा जाए तो दो प्रकार की निर्माण शैलियां कान्धार (दूसरी सदी) व दक्षिण शैली (८वीं-९वीं सदी) स्पष्ट दृष्टिगोचर पड़ती है। इन शैलियों में कनिष्क व आदिशंकराचार्य के काल व दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है। उल्लेखनीय है कि ममेल व निरमण्ड-करसोग क्षेत्र में कनिष्क द्वारा स्थापित महायान पूजा पद्धति व शंकराचार्य के आगमन के प्रमाण मिलते हैं।

७. मन्दिर का वर्तमान निर्माण ढलवां छत वाली पहाड़ी तथा पैगोड़ा की मिश्रित शैली में हुआ है। जिसे सतलुज वर्गीय पहाड़ी शैली का नाम दिया जाता है। उल्लेखनीय है मन्दिर का आजकल भी जीर्णोद्धार चला है जिसमें कि मुख्य ढाँचे को व शैली को सुरक्षित रखते हुए मन्दिर की भव्यता को निखारा जा रहा है।

८. गर्भ-गृह में लिखी एक पंक्ति की लिपि को अभी समझा नहीं जा रहा है। अष्टधातु की मूर्ति पर लिखी यह अभिलेख पंक्ति शारदा व सिंहली लिपि का मिश्रण प्रतीक होता है।

९. मन्दिर प्रवेश द्वार के बाईं ओर स्थापित शिव-पार्वती की प्राचीन पाषाण मूर्ति कान्धार शैली में कनिष्क काल में निर्मित मन्दिर के गर्भ-गृह की मूर्ति होने का संकेत देती हैं। कारण है इस मूर्ति का विशाल आकार में होना।

निष्कर्षों के मन्थन तथा कुछ ताम्रपत्र एवं पाण्डुलिपियां जो कि यहां व्यक्तिगत संरक्षण में उपलब्ध हो सकती हैं, के द्वारा एवं गर्भ-गृह में लिखी लिपि को पढ़ा जाए तो मन्दिर के इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ियां प्रकाश में आ सकती हैं।

प्राध्यापक (भौतिकी)
राजकीय महाविद्यालय करसोग
जिला मण्डी (हि. प्र.)

स्थान वृत्त

गुजरात में पाटन और सिद्धपुर

कौशिक मोदी

गुजराज के स्वर्णयुग के साथ राजाओं की राजधानी का यह नगर-पाटण एक समय विस्तार और वैभव में, शोभा और समृद्धि में वाणिज्य और वीरता में, विद्या और ज्ञान में, गुजरात की सत्ता और गुर्जर संस्कृति के केन्द्र के रूप में उस समय के धारा-अवंली जैसे श्री सरस्वती और संस्कारलक्ष्मी से समृद्ध नगरियों में स्पर्धा करता था। आज की बात अलग है।

सरस्वती नदी के किनारे पर बसा हुआ यह एक समय का महानगर पाटण, दीर्घ अवधि तक गुजरात की राजधानी था। ई० स० ७४६ में वनराज चावडा के समय से चावडा वंश का अंतिम राजा सामंल सिंह और सोलंकी युग तक, बल्कि गुजरात की राजपूत सत्ता के अंत तक बाघेलाओं आदि ने हालांकि बीच-बीच में अन्य स्थलों को राजधानी बदली, पर मुख्यत: पाटण में ही गुजरात की राजधानी रही है।

गुजरात में अन्य स्थलों के नाम के साथ 'पाटण' शब्द शहरवाचक के रूप में जोड़ा जाता है। जैसे कि प्रभास पाटण। 'पाटण' राजधानी का पूरा नाम अणहिकपुर पाटण है। यह पाटण अन्य पाटण से अधिक महत्त्वपूर्ण होने से पाटण नाम से ही प्रसिद्ध हो गया है।

अणहिकपुर पाटण का नाम गुजरात के साम्राज्य की नींव डालने वाले वनराज चावडा के बालमित्र और सहायक भरवाड आणहक के नाम पर से पड़ा है, ऐसा कहा जाता है। पंचासर के राजा जयशिखरी का कल्याण के राजा भुवड के हाथों युद्ध में निधन होने के बाद जैन साधु शीलगुणसूरी और मामा सुरपाल के आश्रय में बाल वनराज का उसकी माता राणी रूपसुंदरी ने पालन पोषण किया। उसने बाद में टोली (मण्डल/समूह) बनाकर राज्य की स्थापना की और अणहिकपुर-पाटण बसाया। इस वनराज चावडा से ही गुजरात के राजपूत युग के इतिहास का आरंभ होता है।

चावडाओं के बाद यहां सोलंकी आये। उसमें से राजा मूकराज देव ने गुजरात के राज्य का सब प्रकार से विस्तार और विकास किया। पर गुजरात के साम्राज्य और समृद्धि का स्वर्ण युग सोलह कला प्रकाशित सिद्धराज जयसिंह का काल है। उस समय के अत्यंत विस्तृत नगर पाटण की समृद्धि और शोभा के वर्णन अनेक प्राचीन ग्रंथों में संग्रहित हैं। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने अपने उपन्यास 'पाटणनी प्रभुता', 'गुजरातना नाथ', 'राजाधिराज' तथा भीमदेव सोलंकी के समय महमूद गजनी के आक्रमण की कथा प्रस्तुत करनेवाला 'जय सोमनाथ' उपन्यास में इस पाटण को केन्द्र में रखा है। गुजरात के प्रथम उपन्यास नंदशंकर के 'करण होलो' और श्री मुन्शी जी के अंतिम ऐतिहासिक उपन्यास 'भग्न पादुका' में सोलंकी के बाद के वंश बाघेलाओं के अंतिम राजवी और गुजरात के अंतिम राजपूत राजा करण बाघेला की कथा निरूपित है। इसमें भी इस

पाटण को केन्द्र में रखा है।

पाटण गुजरात के साम्राज्य का सत्ता केन्द्र ही नहीं, बल्कि विद्याकला का परमधाम समान संस्कृति केंन्द्र भी था। जिसमें से गुजरात की अपनी अलग सांस्कृतिक अस्मिता प्रकट हुई। इसमें जिस तरह राजा के रूप में सिद्धराज जयसिंह का नाम है, वैसे परम विद्वान और धर्मपुरूष के रूप में हेमचन्द्राचार्य का योगदान है। यह जैन साधु कलिकाले सर्वज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। विद्वानों को तैयार करके पाटण को भोज की धारानगरी के साथ स्पर्धा हो सके, वैसा कार्य किया। गुजरात को गौरवमय बनाया। उनके द्वारा रचित महान व्याकरण ग्रंथ 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' में सिद्धराज और हेमचन्द्राचार्य का नाम द्विअर्थी रूप से संकलित है। क्योंकि एक की सहायता और दूसरों के विद्वतायुक्त पुरुषार्थ के बिना वह संभव नहीं था। जब उनका व्याकरणग्रंथ पूरा हुआ तब उसकी हाथी पर सवारी निकाली गई और उसके आगे सब के साथ मिलकर हेमचन्द्राचार्य और महाराजा सिद्धराज भी चलते थे। उन्होंने पाटण की गलियों में घूम कर विद्या का और संस्कारिता का गौरव प्रतिष्ठित किया। इस शब्दानुशासन का आठवां प्रकरण गुजरात की अलग भाषा 'गुजराती' का आद्य व्याकरण गिना जाता है।

सोलंकियों का यह पाटण अनेक महालयों-देवालयों-स्थापत्यों से भरपूर था। इनमें सिद्धराज के समय में बनाया गया सहस्रलिंग तालाब का वर्णन विशालता और भव्यता से अनूठा है। विशाल तालाब के किनारे शिव के हजारों छोटे–छोटे मंदिर हैं। इनके आसपास के मंदिरों, पाठशालों आदि में धर्म और विद्या का विकास होता था। पुरातत्त्वविदों द्वारा खुदाई का काम करते समय मिले इस विशाल तालाब के किनारे और सरस्वती नदी में से आने वाले पानी के नाले आदि का निर्माण आश्चर्यचकित करता है। अभी जिसकी खुदाई का काम हो रहा है, वह है राणी की वाव। 'राणी की वाव' में भी उत्तम प्रकार के स्थापत्य का काम हुआ है। इस वाव की शिल्पाकृतियां और नक्काशी देखकार दर्शकों की आंखें एक ही स्थान पर ठिठक जाती हैं।

पाटण में इसके अतिरिक्त अनेक सुंदर जिनालय हैं। इन जिनालयों (जैन मन्दिरों) के समृद्ध ग्रंथभण्डारों में हजारों प्राचीन पाण्डुलिपियां और प्राचीन गंथ संगृहित है। श्री मुन्शी के प्रयत्नों से एवं अनेक दान दाताओं की सहायता से वहां हेमचंद्रस्मारक बनाया गया है। उसमें आधुनिक व्यवस्था का प्रयास करके जगह-जगह से पाण्डुलिपियां लाकर संगृहित की गई हैं। अब तो पाटण उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय का केन्द्र बना है, इसीलिए प्राचीन इतिहास कला के शोधनात्मक कार्य और संग्रहालय आदि के द्वारा अवशेषों को संचित करने में अधिक गति मिलगी, ऐसी आशा है।

पाटण हेमचंन्द्राचार्य, कुमारपाल जैसे साधुओं, राजाओं और उदयन जैसे मंत्रियों की वजह से बड़ा जैन केंद्र बना और व्यापार तथा कलात्मक जिनालयों से समृद्ध बना। राजा और प्रजा की विशाल हृदय की धर्म सहिष्णुता और व्यापक धर्मदृष्टि से यह शैव आदि पुरातन देवालयों और संस्कृत विद्या का भी केन्द्र बना। इसके विकास में जैनों की भांति नागरों का भी योगदान रहा और राजपूतों के शौर्य ने भी इसे समृद्धि प्रदान की।

यहां के ज्ञानभण्डारों का उल्लेख विशेष रूप से किया जाता है। ८०० से १००० वर्ष

प्राचीन और दुनियाभर में अलभ्य गिने आने वाले ग्रंथ यहां बड़ी संख्या में संगृहित हैं। पाटण के एक ज्ञानभण्डार में तो पंद्रह हजार से भी ज्यादा प्राचीन ग्रंथ संगृहित हैं। यहां ताड़पत्र, भुर्जपत्र, कापड आदि पर लिखे गये ग्रंथ दिखायी देते हैं। उनमें कई अद्‌भुत चित्रों से सुशोभित हैं जो सोने के रंगोंवाले भी हैं। ऐसे ग्रंथों को तैयार करने के प्राचीन साधन भी यहां नमूने के रूप में संगृहित हैं। इसमें मुख्यत: धार्मिक साहित्य हैं। इसके अतिरिक्त काव्य, नाटक आदि विषयों के भी अनेक ग्रंथ हैं। मुनि श्री जिनविजय जी तथा मुनिश्री पुण्यवजियजी जैसे साधु विद्वानों और अन्य संशोधकों ने ग्रंथों की लिपि को पढ़कर उन्हें प्रकाश में लाने का बहुत श्रम किया है। पाटण में बड़े ग्यारह ग्रंथ भंडार हैं।

दूर-दूर तक के गांवों में से मिलते अवशेष पाटण के विस्तार का परिचय करवाते हैं। आज यहां चारों ओर का कोट किला नहीं है, गहरी खड्‌ड भी भर गयी है। सरस्वती नदी का प्रवाह भी थोड़ा-सा दूर गया है और नगर के अवशेष भी थोड़े ही शेष रह गए हैं। आज पाटण गुजरात का नया जिला बना है। पाटण शहर जिला का मुख्य केन्द्र है। यहां का विश्वविख्यात पटोला का हस्तकला उद्योग प्रसिद्ध है परन्तु इसे अब केवल एक कुटुम्ब संभाल रहा है। कादम्बरी जैसे कठिन संस्कृत ग्रंथों की पुरानी गुजराती भाषा के पद्य में काव्यमय अनुवाद करनेवाले और पद लिखनेवाले लगभग १५वीं सदी के कवि भालण का नाम भी पाटण की प्रसिद्धि है।

अलाऊद्दीन खिलजी ने पाटण का ध्वंस करके अहमदशाह राज का केन्द्र यहां रखा। बाद में राजधानी पाटण से बदली और साबरमती के किनारे 'अहमदाबाद' बसाया जिससे पाटण का महत्त्व और समृद्धि का अस्त हुआ।

अब पुन: वहां उद्योगों का विकास हो रहा है। यह उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय का मुख्य केन्द्र हो गया है तो आशा रखते हैं कि, 'सरस्वती तीरे' बाद में वापिस विद्वानसंस्कृति का केन्द्र विकसति होगा।

काल के उदर में उत्तर जानेवाला परसों तो वापिस नहीं जानेवाला पर नये 'आज' का उदय तो होगा ही। यह आशा लोगों में बलवती है।

ऐतिहासिक अणहिलबाड—पाटण से सरस्वती के किनारे-किनारे आगे बढ़ते हैं तो थोड़ी सी दूरी पर सरस्वती के किनारे पर सिद्धक्षेत्र है, सिद्धपुर। सिद्धपुर मातृगया कहा जाता है। जो महत्त्व पिताजी के श्राद्ध के लिए गयाजी का वैसे ही माता के श्राद्ध के लिए सिद्धपुर की महिमा है। कहा जाता है कि भगवान परशुराम ने यहां बिन्दु सरोवर में स्नान करके माता रेणुका का श्राद्ध किया था। इस लोकमान्यता के कारण से आज भी लोग सिद्धपुर में मातृश्राद्ध करते हैं।

आज यह स्थान एक सामान्य नगर है। लेकिन बहोराओं के समुदाय ने इस नगर को समृद्ध किया था। भूतकाल में यहां के सुप्रसिद्ध शिवालय रुद्रमहालय के पुराने ग्रंथों के वर्णन और यहां के अवशेषों से सिद्ध होता है कि सिद्ध पुर बहुत प्रसिद्ध तीर्थ रहा है।

रुद्रमहालय का वर्णन प्राचीन ग्रंथों में पढ़ने से पता चलता है कि वह 'महालय' नाम का भव्य-विशाल और अनुपम शिल्पसमृद्धि वाला स्थापत्य था। सोलंकी युग के मूलराज ने उसके निर्माण की शुरूआत की थी और जयसिंह देव सिद्ध राज ने इसे पूरा किया। उसके सभाखण्डों,

खण्डों, उपखंडों, मंजिल और झरोखों, असंख्य स्तम्भों और मनोहर शिलाबद्ध तोरणों से लगता है कि यह दूसरा सोमनाथ था।

अलाऊद्दीन खिलजी ने इसका ध्वंस्त किया। बाद में धीरे-धीरे इसका नाश होता गया। आज वहां मात्र चार स्तम्भ और ऊपर कमान जैसे थोड़े से अवशेष हैं। किन्तु ये देखने से भी पता चलता है कि वह कितना भव्य और सुंदर होगा? १०० मीटर लम्बे और ७५ मीटर चौड़े प्रांगण में यह दो मंजिले वाला १६०० स्तम्भों वाला और भव्य सभामंडप वाला महालय जिनकी चारों दिशा में चार और तीन मण्डप थे तथा चारों ओर छोटे-मोटे मंदिर थे जिनके शिखरों पर सुंदर नक्काशी वाले स्वर्ण कलशों पर ध्वजा फहरायी जाती थी।

रुद्रमहालय की बात करते हैं तो उसके साथ जुड़ी हुई दो दंतकथाओं को भी जानना चाहिए। एक है इस महालय के खात मुहूर्त (खुदाई के मुहूर्त) की। शिवभक्त राजा मूलराज सोलंकी ने पवित्र सरस्वती के किनारे शिव रुद्र का भव्य महालय बनवाने की अभिलाषा होते ही नक्शा बनवाने के लिए कलाधर शिल्पी स्थापति प्राणधर को आमंत्रित किया। स्थापति और ज्योतिषविद्‌ों ने स्थल पसंद किया। देश-प्रदेश से कारीगर आये। निष्णातों ने पत्थरों की पसंदगी की और काम शुरू किया।

मूलराजदेव का स्वर्गवास हो गया और कुछ दिनों के बाद स्थापित कलाधर और ज्योतिषी प्राणधर की भी मृत्यु हो गई। पाटण की गद्दी पर भीमदेव सोलंकी की मर्दानगी, कर्णदेव और मीनलदेव का शौर्य और चतुराई की कथाओं का अंकन किया गया है। बाद में आये गुजरात को महासाम्राज्य के रूप में प्रस्थापित करने वाले परम भट्टार्क सिद्धराज जयसिंह। किसी ने उसको मूलराजदेव के अधूरे सपने की और अंतिम अभिलाषा की याद दिलाई। सिद्धराज में प्रपितामह के शुरू किए अधूरे कार्य पूरा करने की आकांक्षा जगी। उसने चम्पानेर में बसनेवाले परम विद्वान गंगाधर शास्त्री को न्यौता भेजा।

वृद्ध गंगाधर शास्त्री अभी जीवित थे। बरगद पर की वरवाइयों की तरह उनके अंग पर त्वचा लटक रही थी। हाथ-पैर शिथिल हो गये थे। फिर भी उनमें विद्या की तेजस्वी दृष्टि की सूक्ष्म ज्योत झलकती थी। इनके वार्धक्यक्षीण कानों में गगनचुंबी रुद्रमहाकाय के शिखरों को पीटने (रचना करना) की आवाज सुनाई देती थी। रुद्रपूजा के घंटनाद सुनने की, रुद्र आरती को सुनने की उनकी आन्तरिक इच्छा एवं रुद्रमहालय के निर्माण के सपने को साकार होते देखने की इच्छा में उनकी मृत्यु का मुहूर्त पीछे चला गया था। यह तो भव्य महालय था। उसको पूरा करने में बरसों लगने थे, अभी एक ही मंजिल का काम पूरा हुआ था कि मूलराजदेव की मृत्यु हो गई थी। जाते-जाते वह जय रुद्र! जय रुद्र! बोल कर, कह गये कि मेरी अभिलाषा के इस महालय को पूर्ण करवायेंगे। जो वह पूर्ण करेगा वह अपूर्व राजकीर्ति प्राप्त करेगा। उसी कथन की पूर्ति सिद्ध राज कर रहे थे।

जयसिंहदेव सिद्धराज राजा का न्यौता आते ही गंगाधर शास्त्री पुत्र हीराधर के साथ पाटण गये। मालवा से आमन्त्रित महान ज्योतिषाचार्य मार्कंड शास्त्री भी आ गए थे। रुद्रमहालय के लिए सिद्धपुर के समीप नई भूमि में नये सिरे से खास मुहूर्त की विधि शुरू हुई। आचार्य मार्कंड मार्गदर्शन देते थे, "खड्‌डा अभी सवा गज गहरा करो। विस्तार बराबर। मैंने जो कहा है उसी के अनुसार होना

चाहिए। यह सिद्ध वाटिका है। रखे हुए दंड की छाया पर नज़र रखो और मैं कहता हूं कि तुरंत इस सुवर्णखीली को जमीन में डाल देना .... और मार्कंड शास्त्री की सूचना मुताबिक निर्धारित वक्त के अनुसार धरती में सुवर्णखीली को गाड़ा गया।

मार्कंड शास्त्री बोले : धन्यभाग सबके। राजन्! यह रुद्रमहालय को अब काल भी स्पर्श नहीं कर सकता। वह 'यावद्चंद्रदिवाकरौ' सुहाए।

राजा ने पूछा : मार्कंड जी, किस आधार पर ऐसा कहते हो ?

मार्कंड जी : महाराज, खीली (खूंटी) शेष के मत्थे पर लगी है। यह पल स्थिर हो गये। उसको अब उत्पत्ति या क्षय न होगा।

जयसिंह देव : आचार्यवर, जिसका क्षय न हो, ऐसी उत्पत्ति ? ब्रह्मा ने भी ऐसा सृजन नहीं किया।

मार्कंड जी : महाराज, मेरी ज्योतिष गणना के अनुसार मुहूर्त मिथ्या नहीं हो सकता। प्रलयकाल की लहरें इस महालय की सीढ़ियों को पखारेंगी। राजन्! खूंटी (खीली) शेष के मत्थे पर लगी है।

जयसिंहदेव : अरे, कौन सा प्रलयकाल ? कौन से शेष का माथा ? क्या इस वक्त पाताल और यह वैब की खूंटी ?

मार्कंड जी : राजन्! विद्या की परख नहीं की जाती।

जयसिंहदेव : आचार्य जी, पर मुझे तो प्रमाण देखना है। बता सकते हो ?

मार्कंड जी : महाराज, तो इस खूंटी(खीली) को निकालो, और रक्तधारा बहेगी।

और बहुत सी चर्चा–विचारणा, फिर भी महाराज जयसिंह ने राजहठ न छोड़ी इसलिए मार्कंड शास्त्री ने कहा, "तो अच्छा, इस खूंटी (खीली) को थोड़ी–सी खींचकर रक्त दिखाई दे तो तुरंत ही वापिस दबा देना।"

खूंटी खींची ..... और तुरंत वापिस दबाया, वहां तो महाराज जयसिंहदेव के वस्त्रों पर रक्तधारा छूट गई।

राजा ने चकित होकर मार्कंड जी की ओर देखा। पर मार्कंड जी विषाद ग्रस्त थे। बोले, "महाराज, खूंटी को खींचा और बाद में दबाया, इतने ही क्षणों में शेषनाग निकल गये। बाद में खूंटी मत्थे पर नहीं पूंछ पर लगी।

जयसिंहदेव : तो परिणाम ?

मार्कंड जी : अधीश्वर! कहने में दु:ख होता है पर इसका परिणाम यह है कि आपके अंग पर शेष की रक्तधारा का अभिषेक हुआ है, इसलिए आप अजित तो बनोगे पर....।

जयसिंहदेव : पर ?

मार्कंड जी : पर .... आपकी कीर्ति पर कलंक के दाग लगेंगे और यह रुद्रमहालय संपूर्ण होगा, पर समय आने पर उसका विनाश होगा। उसके अहोरात्र के घंटराव गुंगला जायेंगे, महालय के पत्थर–पत्थर पर भारी हथौड़े के निशान होंगे। उसका वैभव और महिमा विलुप्त हो जायेगी। रहेंगे मात्र उसकी स्मृति के टूटे हुए खंडहर।

रुद्रमहालय के अवशेष के आगे खड़े होकर इस कथा को सुनने से और भी रोमांच उत्पन्न होता है। वास्तविकता के इतिहास से जुड़ी इस दंतकथा में प्रजा की संवेदना के दर्शन ज्यादा सफल होते दिखायी देती हैं।

अब दूसरी कथा सुनते हैं, यह रुद्रमहालय के अलाऊद्दीन के सरदारों के हाथ हुए विध्वंस के प्रसंग के साथ जुड़ी हुई है। कालक्रम में सिद्धपुर का ध्वंस हुआ। घर-घर पर अलाऊद्दीन के सरदार घूम आए। लूट, आक्रमणों, अपहरणों का दौर शुरू हुआ। तब सिद्धपुर में एक श्रीमाली ब्राह्मण रहता था, नाम था असाईल। पूजा-पाठ, कर्मकांड, ब्राह्मण का कार्य करता था। उसके घर उसके यजमान पाटीदार की बेटी मेहमान के रूप में आयी। आक्रमणों से बचाने के लिए असाईल ने सोचा, अलाऊद्दीन और उसके सरदार संगीत प्रेमी है। शायद प्रसन्न हो। असाईल एक अच्छा संगीतज्ञ था। उसने गाना शुरू किया। सिपाहियों ने उसको पकड़कर सरदार के सामने पेश किया। उसने आज्ञा मिलते ही संगीत शुरू किया। सरदार प्रसन्न हुआ और उसकी कृपा के बदले में असाईल ने मांगा, "मेरे घर की बेटियों को कोई हाथ न लगाए।" सरदार ने वायदा दिया .... पर प्रत्येक बस्ती में कूड़े का ढेर भी होता है। किसी ने सरदार को कहा, "वायदा तो निभाना, पर एक स्वरूपवान युवती उसकी बेटी नहीं है।" असाईल ने सरदार के प्रश्न का उत्तर दिया और कहा, "वह मेरी ही बेटी है।" पर वह चुगलखोर था चतुर। सरदार को कहा, "इस ब्राह्मण को कहो कि वह उसके साथ एक ही थाली में खाना खाए।" असाईल के सामने धर्मसंकट आया। ब्राह्मण होकर पाटीदार के साथ कैसे खाये ? उस जमाने में यह बात बहुत कठिन थी। एक ओर वर्ण-धर्म तो दूसरी ओर युवती की रक्षा। असाईल ने वर्ण बंधन तोड़कर उसके साथ खाना खाया। इस तरह युवती को बचाया।

बाद में सब कुछ शांत हो जाने के बाद सिद्धपुर के ब्राह्मणों ने इस ब्राह्मण का बहिष्कार किया। अब असाईल पूजा-पाठ, धर्म-कर्म नहीं कर सकता। उसकी मदद करने के लिए पाटीदार आये। उन्होंने असाईल को वार्षिकी बांध (वार्षिक वृत्ति) दी।

असाईल को लगा 'मुफ्त क्यों खाना खाऊँ ? कुछ बदले में दूं भी।' इस कलाकार ब्राह्मण ने अपने तीन पुत्रों को लेकर मंडली बनायी। गाँव-२ भव्य संगीत-नृत्य नाटक करने लगे। प्रजा का मनोरंजन किया और उसके साथ ही समाज सुधारक उपदेश भी दिये। इसको अभिनय के स्वरूप में अभिव्यक्त करने के लिए एकांकियों जैसी छोटी रचनाएं कीं, इसे कहा है वेश। इसने ३०० वेशो की स्थापना की। इस तरह प्रारंभ हुआ गुजरात के लोकनाट्य भवाई का और वह तीन लड़कों के तीन घर में त्रगाला (त्रागाणा) अर्थात् तीन घरवाले का वंश आरम्भ हुआ।

लोकनाट्य के रूप में भवाई देखने लायक, जानने लायक है। इसी असाईल ने 'हंसावुलि' (हंसावलि) नामक एक दीर्घ कथा भी प्राचीन गुजराती भाषा में लिखी। असाईल का गुजरात के सांस्कृतिक इतिहास में अनन्य योगदान है।

शालपूं मण्डी, तीन बत्ती, लंगरी वास,
बड़ादूर गंज, पालनपुर, जिला बनासकांडा,
गुजरात – ३८५००१

राष्ट्र विभूति

संत वल्लुवर

राजेन्द्र सिंह गौड़

तमिल-प्रदेश (मद्रास) के संतों में संत वल्लुवर का सर्वोच्च स्थान है। वह न तो किसी संप्रदाय के प्रवर्तक थे और न किसी संप्रदाय से उनका संपर्क था। वह सब धर्मों और संप्रदायों के मूल तत्त्व प्रेम के साधक थे। प्रेम ने उनके व्यक्तित्व में विभिन्न रूप धारण किये थे। दुखी मानव-समाज को सतत् सुखी बनाने की दृढ़ भावना से उन्होंने अपने सभी सिद्धान्तों में प्रेम को प्रथम स्थान दिया था। उनका कहना था प्रेम पूर्वक रहो, प्रेमपूर्वक जियो, प्रेम-भरे वचन बोलो, ईश्वर से प्रेम करो, क्योंकि समस्त वसुधा का एकमात्र स्वर्गीय आश्रम प्रेम ही है।

प्रेम के अमर गायक संत वल्लुवर का जन्म कब हुआ, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। इतिहासकारों का कहना है कि उनका आविर्भाव ईसा की पहली शताब्दी में हुआ था। उस समय मद्रास के मैलापुर में नीतीअय्या नाम के एक व्यापारी की मंडी थी। उसमें रहने और भोजन आदि बनाने के लिए भी स्थान था। एक दिन काशी (वाराणसी) की यात्रा पर निकले हुए एक ब्राह्मण नवयुवक का उस ओर आगमन हुआ। उस नवयुवक ब्राह्मण का नाम भगवान था। भगवान उसी मंडी में टिक गये। जिस समय वह उस मंडी के एक कमरे में भोजन बना रहे थे उस समय एक लड़की ने उसके भीतर झांककर देखा। भगवान को उस लड़की की असभ्यता पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपनी कड़छी उसके सर पर जड़ दी। 'क्षमा कीजिए पण्डितजी' कहकर लड़की चोट की पीड़ा से व्याकुल होकर भाग गई।

भगवान दूसरे दिन अपनी काशी-यात्रा पर निकल गये। कई वर्ष बाद वह फिर उसी मार्ग से लौटे और मैलापुर की उसी मंडी में ठहरे। वह चंचल लड़की इस समय तक जवान हो चुकी थी। अपूर्व तेज था, उसके मुखमण्डल पर। उसका गौरवर्ण, भीतरी तेज से उसकी दमकती आँखें, ज्योत्स्ना की आभा से मंडित उसका दिव्य-रूप सौंदर्य के सांचे में ढला हुआ उसका सुडौल शरीर भगवान ने देखा तो दंग रह गया और उसे अपना हृदय दे बैठा। उस लड़की का नाम था आदीअम्मा। वह नीतीअय्या की पोष्य-पुत्री थी। उसके माता-पिता शूद्र थे। पर भगवान ने एक उच्च कुलीन ब्राह्मण होकर भी जात-पात के बंधन की चिन्ता नहीं की। नीतिअय्या ने दोनों का विवाह कर दिया।

विवाह हो तो गया, पर इससे पण्डित-समाज में बड़ा कोलाहल उठ खड़ा हुआ। ब्राह्मण का विवाह अछूत-कन्या से! परन्तु वे दोनों प्रेम-बंधन में बंध चुके थे। इसलिए दोनों ने यह निश्चय किया कि उनसे जो संतान उत्पन्न होगी उसे वे त्याग देंगे। कहा जाता है कि आदीअम्मा के गर्भ से सात संतानें हुईं जिनमें से सबसे बड़ी अव्वाई नाम की एक कन्या थी और सातवीं संतान हमारे संत

वल्लुवर थे जिन्हें तिरुवल्लुवर कहते हैं। तिरुवल्लुवर का अर्थ है संत वल्लुवर।

संत वल्लुवर का जन्म मैलापुर के एक कुंज में हुआ था। जब वह उत्पन्न हुए तब उनके माता-पिता ने अपने हृदय पर पत्थर रखकर उन्हें वहीं एक झाड़ी में छिपा दिया। फिर वे रोते-बिलखते अपने घर लौट गये। भगवान ने उस नवजात शिशु पर कृपा की। एक स्त्री आई और वह उस परित्यक्त बालक को अपने घर ले गई। उसने अपने पुत्र की भांति उसका लालन-पालन किया और उसका नाम रखा वल्लुवर। वल्लुवर धीरे-धीरे बड़े हुए। बचपन से ही वह दिव्य गुणों से मंडित थे और अलौकिक तेज से उनका मुख-मण्डल चमकता रहता था। लेकिन इसका कुछ भी ध्यान न कर ब्राह्मण-समाज में उनके विरुद्ध चर्चा आरम्भ हो गई। एक परित्यक्त बालक को ब्राह्मण-समाज अपने में खपा नहीं सकता था। इसलिए उसने वल्लुवर के पोषक माता-पिता को जाति-बिरादरी से बहिष्कृत करने की धमकी दी। वल्लुवर इसे सहन न कर सके। उन्होंने अपने पोषक माता-पिता को समझा-बुझाकर उनका घर त्याग दिया और तप करने के लिए निकल गये।

बाल-तपस्वी वल्लुवर ने एक वन-खंड में खजूर के वृक्ष के नीचे बैठकर कुछ दिनों तक अपनी तथा संसार की स्थिति पर विचार किया। किन्तु जब वहां उनका दर्शन करने के लिए लोगों की भीड़ होने लगी तब वह उस स्थान को त्यागकर एक पर्वत की ओर चले गए और साधु-संतों तथा सिद्धों के बीच रहकर तप करने लगे। उनकी तपस्या से साधु-संत बहुत प्रभावित हुए और थोड़े ही दिनों में उनका नाम चारों ओर फैल गया। एक दिन मारगासहायम नाम का एक व्यक्ति उनके पास आया। बल्लाल-देश के कावेरी पुमपुट्टिनम में उसका घर था जिसे भूतों ने घेर लिया था। वह धनी-मानी था, किन्तु भूतों से उसका बस नहीं चलता था। वल्लुवर से उसने सहायता की याचना की। वल्लुवर उसके घर गये। उनकी तपस्या के प्रभाव से भूत भाग गये और कावेरी पुमपुट्टिनम की जनता भय से मुक्त हो गई। मारगासहायम ने अपने घर में उन्हें अपना अतिथि बनाया और अपनी-पुत्री वासुकि को उनकी सेवा में लगा दिया। कुछ दिनों बाद उसी कन्या से वल्लुवर का विवाह हो गया। इस प्रकार वल्लुवर तपस्वी से गृहस्थ हो गये।

वल्लुवर एक कुटी बनाकर अपनी पत्नी वासुकि के साथ रहने लगे। वासुकि के पिता मारगासहायम ने अपनी संपत्ति का एक भाग उन्हें देना चाहा, लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। अपने भरण-पोषण के लिए वह बुनकर का काम करते थे। जो कपड़ा वह तैयार करते थे उसे वह बाजार में बेच आते थे और इस प्रकार जो धन प्राप्त होता था उसी पर वह निर्भर रहते थे। उनकी पत्नी वासुकि एक धनी की पुत्री थी। हजारों का वारा-न्यारा उसके घर होता था, किन्तु अपने पिता की उस सुख-संपत्ति पर लात मारकर वह अपने पति के साथ अनेक प्रकार के कष्ट झेलते हुए भी स्वर्गीय सुख का अनुभव करती थी। वह सतीसाध्वी,परम विदुषी, संतोषी, कोमल और अतिथि-सत्कार में कुशल थी। उसके इन दिव्य गुणों से प्रभावित होकर वल्लुवर उसे बहुत प्यार करते थे और वासुकि अपने पति के प्रत्येक कार्य में उनकी सहायता करती थी।

एक दिन वल्लुवर की कुटी के पास शिक्षा लेने के लिए कोंणकण सिद्ध नामक एक संत का आगमन हुआ। प्रात:काल का समय था। चारों और धूप फैल गई थी। वासुकि और वल्लुवर दोनों करघे का काम कर रहे थे। उन्हें अपनी ओर आकृष्ट होते न देखकर आगन्तुक सिद्ध की भौंहें चढ़ गयीं और क्रोध से उसके होठ कांपने लगे। वासुकि ने देखा तो बोली – ''महाराज! मैं क्रौंच पक्षी नहीं हूँ। जो क्रोध को नहीं खाता, क्रोध उसे ही खा जाता है।''

वासुकि के मुख से क्रौंच पक्षी का नाम सुनते ही कोंणकण सिद्ध का क्रोध काफूर हो गया। विनम्र होकर बोले – ''माता! एक बार मैंने क्रोध में आकर क्रौंच पक्षी की इसलिए हत्या कर दी थी कि उसने मेरे सर पर बीट कर दिया था। क्रोध सचमुच उसे ही खाता है जो क्रोध को नहीं खा पाता। मैं भिक्षा लेने नहीं आया हूँ। मैं वल्लुवर से उपदेश लेने आया हूँ।''

वल्लुवर ने सिद्ध का स्वागत किया और उनका खूब सत्कार किया। कोंणकण सिद्ध वल्लुवर के प्रवचनों से इतना प्रभावित हुए कि वह वल्लुवर के शिष्य हो गये। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने स्वामी वल्लुवर की बहुत प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है, ''संत वल्लुवर अपनी पत्नी वासुकि के साथ बड़े प्रेम और शांति से रहते थे। वासुकि घर का सारा कार्य करने के साथ-साथ अपने पति के काम में भी उनका हाथ बंटाती थी। वह स्वयं कुएँ से जल लाती थीं और दिन-रात पति सेवा में लगी रहती थीं। गृहस्थ जीवन उसी का सुखद और शांतिमय होता है जिसकी पत्नी आज्ञाकारिणी होती है।'' और इसमें संदेह नहीं कि वासुकि वल्लुवर की उस झोपड़ी की देवी थी। वह वल्लुवर की आध्यात्मिक प्रेरणा की स्रोत थीं। उनके संसर्ग से वल्लुवर में अनेक दिव्य गुणों का विकास हुआ था।

वल्लुवर धरती के समान उपकारी और संतोषी थे। एक दिन बाजार में बैठे यह अपना कपड़ा बेच रहे थे। शाम हो गई थी और उनका सब कपड़ा ज्यों का त्यों रखा हुआ था। इतने में एक चंचल नवयुवक उधर आ निकला। वल्लुवर को चुपचाप बैठा देखकर उसने इठलाते हुए पूछा– ''कितने में दी यह साड़ी?''

''एक पाणम'' – संत वल्लुवर ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

नवयुवक ने साड़ी उठा ली और उसे दो बराबर भागों में फाड़ते हुए पूछा – ''बोलो, अब आधी साड़ी का क्या लोगे?''

वल्लुवर ने हंसते हुए कहा– आधा पाणम।''

उस आधी साड़ी को भी दो भागों में फाड़ते हुए उस नवयुवक ने फिर प्रश्न किया–''अब इस एक टुकड़े का दाम बोलो।''

''एक चौथाई पाणम''– संत ने नम्रतापूर्वक कहा।

नवयुवक ने झल्लाकर साड़ी के टुकड़े संत वल्लुवर के मुंह पर फेंकते हुए कहा– ''कौन मूर्ख खरीदेगा इन चीथड़ों को?''

संत वल्लुवर ने चुपचाप यह अपमान सह लिया और उन टुकडों को लपेटकर अपने घर

चले गये। नवयुवक ने उनका पीछा किया और वह भी उनके घर पहुंचा। घर पहुंचते ही उसने वासुकि का हाथ पकड़ लिया। यह देखकर संत वल्लुवर के संतोष का बांध टूट गया। उन्होंने नवयुवक को बुरी तरह पीटा। नवयुवक चिल्लाया– ''मुझे क्यों मारते हो। मैंने सुना था कि तुम धरती के समान संतोषी हो, परन्तु अब मैं देखता हूँ कि तुम ढोंगी हो।''

संत वल्लुवर ने कहा – ''संतोष की भी एक सीमा होती है। जब तक तुम मेरा वस्त्र फाड़-फाड़कर मेरी हानि करते रहे तब तक मैंने संतोष किया, किन्तु जब तुमने मेरी पत्नी का हाथ पकड़र अपनी कुवासना का परिचय दिया तब मैं चुपचाप न रह सका। दुष्ट को कुकर्म करने के लिए बढ़ावा देना नपुंसकता है। इसलिए मैं तुम्हें पीट रहा हूँ जिससे भविष्य में तुम फिर कभी ऐसी भूल करने का दुस्साहस न करो।''

वह दुष्ट नवयुवक एलालशिंगम का पुत्र था। बचपन से ही वह बिगड़ गया था। उस दिन संत वल्लुवर के हाथ की मार खाकर उसके होश ठिकाने आ गये और वह एक नेक आदमी बन गया। अपने पुत्र के स्वभाव में परिवर्तन देखकर एलालशिंगम को बहुत आश्चर्य हुआ। इस संबंध में उन्होंने अपने पुत्र से बातचीत की और अब उन्हें वल्लुवर का नाम ज्ञात हुआ तब वह स्वयं उनसे मिलने के लिए उनके घर गये।

एलालशिंगम सूत के बहुत बड़े व्यापारी थे। विदेशों से उनका व्यापार होता था। वह संत वल्लुवर के बड़े भक्त थे। एक दिन संत वल्लुवर उनके यहां सूत लेने गये। उस समय एलालशिंगम पूजा कर रहे थे। संत वल्लुवर ने उनकी पत्नी से कहा–''वह घर में पूजा करते हैं, लेकिन उनका ध्यान तो सूत के व्यापार में लगा है। यह कैसी पूजा है?'' एलालशिंगम ने संत वल्लुवर की बात सुन ली। पूजा छोड़कर वह उठ खड़े हुए ओर संत वल्लुवर के चरणों पर गिर पड़े। उस दिन से उस धनी व्यापारी का जीवन ही बदल गया। उसकी प्रार्थना से ही संत वल्लुवर ने 'कुरल' की रचना आरंभ की। इस महाग्रंथ की रचना का आरम्भ होते ही उनकी पत्नी वासुकि का देहावसान हो गया। वासुकि के देहावसान से संत वल्लुवर को बहुत दु:ख हुआ। इसके बाद वह त्यागी हो गये और फिर वह ईश्वरोपासना, काव्य-रचना और आध्यात्मिक साधना में इतने लीन हो गये कि वह उस विरहवेदना को भूल गये। उन्होंने 'कुरल' की रचना समाप्त की। एलालशिंगम ने उसे पढ़कर उसकी बड़ी प्रशंसा की।

उन दिनों मदुरा में पंडितों और विद्वानों की एक सभा थी। यह सभा तमिल भाषा के ग्रंथों पर विचार किया करती थी। एलालशिंगम के आग्रह करने पर संत वल्लुवर अपनी रचना लेकर इस सभा में गए। सभा के सदस्यों ने उनके ग्रंथ की बड़ी प्रशंसा की। वास्तव में संत वल्लुवर ने अपने इस ग्रंथ में गागर में सागर भर दिया था। इसकी रचना उन्होंने तमिल-भाषा के कुरल छंद में की थी। इसलिए उनके इस ग्रंथ को 'तिरुकुरल' कहते हैं। इसमें कुल एक सौ तैंतीस अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में दस-दस कुरल छंद हैं। इस प्रकार समूचे ग्रंथ में कुल तेरह सौ तीस कुरल छंद हैं। दो चरणों का एक कुरल छंद होता है। यह हिन्दी के दोहे से भी छोटा छंद है।

'तिरुकुरल' तमिल भाषा का बेजोड़ ग्रंथ है। कई भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। इसकी रचना का उद्देश्य लोगों को जीवन के सत्य का परिचय कराना है। इसलिए इसे 'सत्यवाणी' कहते हैं। यह तमिल भाषा-भाषियों का वेद है। इसमें मुख्यत: धर्म, अर्थ और काम की चर्चा की गई है। मोक्ष इसका विषय नहीं है। संत वल्लुवर का कहना था कि धर्म, अर्थ और काम के सधने में मोक्ष स्वयं सध जाता है। वह यह मानते थे कि आत्म-नियन्त्रण और संयम से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है और इसका अभाव उसे नरक में झोंक देता है। ईश्वर के संबंध में उनका कहना था कि जिस प्रकार 'अ' सभी अक्षरों में व्याप्त है, उसी तरह सारी सृष्टि में ईश्वर की सत्ता है।

संत वल्लुवर वेदांती थे। दु:ख और सुख में उनकी स्थिति समान रहती थी। वह किसी के लेने-देने में नहीं थे। किसी संप्रदाय से उन्होंने अपने आपको नहीं बांधा था। अपने जीवन में उन्होंने अनेक प्रकार के अपमान सहे, लेकिन इसके साथ ही उन्हें यश भी कम नहीं मिला। समाज से बहिष्कृत होकर भी उन्होंने समाज का ही हित-चिंतन किया। बचपन तप में बीता, जवानी गृहस्थाश्रम में बीती, वृद्धावस्था में उन्होंने सन्यास लिया। जीवन का कटु और सुखद अनुभव जैसा उन्हें हुआ, वैसा कम लोगों को होता है। वह निर्लोभी, त्यागी, संतोषी, विनम्र और प्रेम के उपासक थे। जब उनके महाप्रयाण का समय आया, तब उन्होंने अपने भक्तों को बुलाया और उन्हें निर्जीव, शरीर जंगल में फेंक देने का आदेश दिया। उनके आदेश के अनुसार उनका निर्जीव शरीर जंगल में फेंक दिया गया। पंच-भूतों से निर्मित शरीर पंच-भूतों में मिलकर अदृश्य हो गया। इस समय मद्रास के मैलापुर में उनके जन्म-स्थान पर उनका एक समाधि मंदिर बना हुआ है। इस समाधि की पूजा-अर्चना वहां के सर्वोच्च ब्राह्मण करते हैं। साहित्य-सेवियों के लिए यह मंदिर तीर्थ-स्थान है।

संत वल्लुवर के जीवन ने यह सिद्ध कर दिया है कि कोई जन्म से बड़ा नहीं होता, बल्कि व्यक्ति कर्म से बड़ा और समाज के लिए पूज्य होता है।

तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।

मनुस्मृति 11/234

देवों और मानवों के सभी सुखों का मूल तप है।

पर्व-त्यौहार

ऐसे मनाई जाती है चम्बा में लोहड़ी

रमेश जसरोटिया

बड़ी-बड़ी मशालों का समूह जिसे स्थानीय भाषा में मुसा'रा कहते हैं, चौगान में पहुंचता है और डाकघर के समीप जल रही लकड़ी की टाल (घियाणा) को छूने का प्रयत्न करता है, उस टाल के समीप डण्डों और पत्थरों से लैस लोग हमला करके समूह को भगाने का प्रयास करते हैं ताकि समूह उस घियाणे को न छू सके। पर समूह बाजिद है। वह भी उन हमलादारों का मुंह तोड़ जबाब देता है लघु युद्ध का सा दृश्य है, मुसा'रे टूट जाते हैं। लोगों के सिर फट रहे हैं। कुछ बेहाल हैं। साथ के लोग उन्हें चिकित्सा सुविधा के लिए उठाकर भागते हैं। कई लोगों की हालत पतली है। पर आज सभी निडर है। आज उनपर कोई मामला दर्ज़ नहीं हो सकता, उनका कोई कुछ नही बिगाड़ सकता। क्योंकि आज लोहड़ी है। वर्ष भर की दुश्मनी निकालने का सुनहरा अवसर।

यह दृश्य आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व का है और स्थान था— वर्तमान हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत तत्कालीन प्रसिद्ध पहाड़ी रियासत चम्बा। आज भले ही यह तथ्य पाठकों को आश्चर्यचकित करे पर राजाओं के समय में चम्बा की लोहड़ी इसी तरह की थी। सभी को यह अधिकार प्राप्त था कि लोहड़ी की पूर्व-रात्रि को मनमर्ज़ी से हमला और बचाव करें। कहते हैं यदि किसी की हत्या भी हो जाती तो हत्या का मुक़द्दमा नहीं चलता था।

यूं तो हिमाचल और पंजाब के अलावा लगभग सारे उत्तर भारत में लोहड़ी मनाए जाने की प्रथा है पर चम्बा की लोहड़ी एक अलग आकर्षण रखती है। प्रत्येक वर्ष पौष माह की सक्रान्ति को समस्त चम्बा शहर (नए बसे या कुछ क्षेत्र विशेष को छोड़कर) चौदह भागों में विभक्त हो जाता है। इन्हें मढ़ी कहा जाता है। प्रत्येक मढ़ी का अपना क्षेत्र होता है और प्रतिवर्ष ये मढ़ियां अपनी-अपनी मढ़ी से एक प्रमुख चुनती है जिन्हें सरझाड़ कहते हैं। क्षेत्र के लगभग पन्द्रह वर्ष या उससे कम उम्र के लड़के इसके सदस्य बन सकते हैं। एक मढ़ी में पूरी मुहल्ले का क्षेत्र सम्मिलित रहता है। प्रत्येक मढ़ी के लड़के प्रतिदिन अथवा हर तीसरे दिन अपने मुहल्ले के प्रत्येक घर में जाकर लकड़ियां और वर्षा वाले दिन मक्की के दाने मांगते हैं। लकड़ियां मांगते समय एक लड़का मुख्य बोल बोलता है बाकी साथी उसका समर्थन करते हैं जैसे :—

मुख्य स्वर — इक घड़ी बिच परबत लाणा
बाकी — घेरणी....
मुख्य — चूड़ियां दा छज्ज पराणा
बाकी — घेरणी...
मुख्य — चूड़ियां दी बिल्ली कुट्टी

बाकी – घेरणी

मुख्य – जुलाहा ग्लांदा झूट्टी मुट्टी

बाकी – घेरणी...

जुलाहा गेआ पुकारा

बाकी – घेरणी

इसी तरह लम्बे क्रम तक यह बोल गाए जाते हैं। अंत में एक लड़का 'टूट-म-टूटा' कहेगा बाकी 'लकड़ी दी डाली सुट्टा' कहेंगे। इस प्रकार के कई गाने हैं। मक्की के दाने मांगने के लिए वह अलग गीत गाते हैं जो इस प्रकार है :–

मुख्य स्वर – खड्डे खाणे

बाकी – घांणदे

मुख्य – मढ़ी पुजाणे

बाकी – घांणदे

मुख्य – शिवा जो चढ़ाणे

बाकी – घांणदे

मुख्य – तुसां जो खुआणे

बाकी – घांणदे

मुख्य – टूट म टूटा

बाकी – कुकड़ी री माणी सुट्टा

इसी प्रकार यह कार्यक्रम माहभर चलता है। लकड़ियां सरझाड़ के घर जमा की जाती हैं और मक्की के दाने उसी दिन भुनाकर आपस तथा उपस्थित जनों में बांट दिए जाते हैं। जिस घर से लकड़ी अथवा मक्की देने में आनाकानी की जाती है, वहां सभी लड़के यह नारा लगाते हैं :–

जन्दरे उप्पर जन्दरा, ए घर चन्दरा

अर्थात ताले ऊपर ताला है, यह कमीना घरवाला है। लकड़ियां मांगने के पश्चात प्रतिदिन सभी लड़के अपनी-अपनी मढ़ी में एकत्रित हो जाते हैं। फिर मढ़ी के एक तरफ निर्धारित स्थान पर जलाने के लिए लकड़ियां पत्तियां आदि चुनने चले जाते हैं। इसे भूम्भूड़ कहते हैं। सदस्यों द्वारा इकट्ठा किए इस भूम्भूड़ को मढ़ी के निर्धारित स्थान विशेष में रखकर उसमें आग लगा दी जाती है और उपस्थित जन, आग के चारों ओर खड़े होकर हाख मटीटू खेलते है। अर्थात एक लड़के की आंख बन्द कराकर उसका हाथ आगे करा दिया जाता है। बाकी लड़के बारी-बारी से उसके हाथ में मारते है। यदि बंद आंखों वाला लड़का मारने वाले को पहचान ले तो आंखें बन्द करवाने की बारी बदलकर पहचाने गए लड़के की आ जाती है।

कभी-कभी इतवार को या छुट्टी वाले दिन प्रत्येक मढ़ी के लड़के आस-पास के गांवों में अनाज मांगने जाते हैं। इस इकट्ठे किए गए अनाज को बेचकर पैसे जमा कर लिए जाते हैं। यह

कार्यक्रम पौष मास के अंतिम तीन दिनों को छोड़कर अर्थात अठाईस, उनतीस दिन चलता है। लोहड़ी से दो दिन पहले निक्का जागरा (छोटा जगराता) और एक दिन पूर्व बड्डा जागरा (बड़ा जगराता) मनाया जाता है। इन दो दिनों में सिर्फ मक्की के दाने ही मांगकर भुनाए और बांटे जाते हैं। लड़कों को भूम्भूड़ एकत्रित नहीं करना पड़ता। महीना भर मांगी गई लकड़ी या किसी घर द्वारा महीने भर लकड़ियां न देने के एवज में दिए एक ठेले (लकड़ी के ठूंठ) को निक्के और बड्डे जागरे वाले दिन जलाया जाता है। निक्का जागरा अर्धरात्रि तक और बड्डा जागरा सारी रात जागकर गाते बजाते काटा जाता है। बड्डा जागरा मनाने के पश्चात प्रत्येक मढ़ी के लड़के प्रात:काल झुरमुटे में चौदह मढ़ी-क्षेत्रों में पैसे मांगने के लिए निकल जाते हैं। दोपहर तक प्रत्येक घर से पैसा एकत्रित किया जाता है। हर घर अपनी सामर्थ्यानुसार धन देता है। इस मांगने को कठोरा कहते हैं। मांगते समय लड़के सामूहिक रूप में यह कहते हैं :—

हांकर—हांकर गभरूओ, काठोरा
पंज्जे बह्न्ने भानोरा
इक रूप्पैया राखोरा
देओ जी टका धेली।

दोपहर पूर्व सभी लड़के अपनी-अपनी मढ़ी में लौट आते हैं। इसके पश्चात मुसा'रों के लिए लकड़ी लाने चले जाते है। पहले राजा की तरफ से लकड़ियां उपलब्ध कराई जाती थीं पर अब यह कार्य नगर परिषद करती है। मुसा'रों के लिए सात मढ़ियों को ही लकड़ियां दी जाती हैं। ये नर मढ़ियां हैं। बाकी की सात मादा मानी जाती हैं। सबसे बड़ी राजमढ़ी है फिर बज़ीर, फिर कोतवाल और इसी क्रम से आगे इनका विभाजन हुआ है। इन्हीं सात नर मढ़ियों को छोटे जागरे वाले दिन से बजाने के लिए नगारे भी दिए जाते हैं। लकड़ियां प्राप्त करने के पश्चात बारी आती है मुसा'रा बनाने की। मुहल्ले के वरिष्ठ और अनुभवी व्यक्ति मुसा'रा बांधते हैं। राज मुसा'रा त्रिमुखी, वजीर मुसा'रा दोमुखी और बाकी एक-एक मुखों वाले बनाए जाते हैं। सबसे पहले राज मुसा'रा अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। इस मुसा'रे को कर्मकाण्डी पण्डित द्वारा ***जीवादान*** (जीव-दान) दिया जाता है। मंत्रोचारण के साथ मेंढे की बलि दी जाती है। यह मेंढा भी अब नगर परिषद् द्वारा इसी मढ़ी को उपलब्ध कराया जाता है। फिर भगवान शिव के नाम का जय जयकार कर, बलिष्ठ एवं उत्साही व्यक्तियों द्वारा उसे उठाकर नगर, परिक्रमा के लिए फेरा (यात्रा) प्रारम्भ किया जाता है। राजमढ़ी सुराड़ा मुहल्ला में है। यहां से वज़ीर मढ़ी अर्थात चौंतड़ा की तरफ फेरा पहुंचता है। चौंतड़ा से पहले राजनौण नामक जगह में दोनों मुसा'रे आपस में मिलणी करते हैं। राज मुसा'रा आगे और बजीर मुसा'रा उसका अनुगमन करता कटुआल़ (कोतवाल) मढ़ी द्रोबी मुहल्ले पहुंचता है। यहां जल रहे घियाणे में तीन बार राज मुसा'रा डुबोया जाता है। उसके पश्चात वजीर, तत्पश्चात कोतवाल मुसा'रा, पहले दोनों मुसा'रों के पीछे बनगोटू मुहल्ले की तरफ चलता है। यह क्रम सात मढ़ियों तक चलने के पश्चात सारे मुसा'रे चौगान में पहुंचते हैं। आगे-आगे राज-मुसा'रा और पीछे अनुसरण करते बाकी छ: नर मुसा'रे। चौगान में लहौर खाना मढ़ी

के लोग राज मुसा'रे को तो घियाणे में डुबोने देते हैं पर बाकी के मुसा'रों को न डुबोने के लिए लड़ाई प्रारम्भ हो जाती है। बाकी के मुसा'रो को उठाने वाले यदि बहादुर हैं तो वे जबरन डूबा लेंगे अन्यथा उन्हें नारी मढ़ी वाले तोड़कर अपनी मढ़ी के जलते घियाणो में फैंक देंगे। राज मुसा'रे को न तो तोड़ा जाता है, न ही उस पर हमला किया जाता है। यदि किसी मढ़ी वाला यह कर देता है तो उसे अपने खर्चे पर पुन: उसी विधि से राज मुसा'रा उठाना पड़ता है जिस विधि से उसने अपनी मढ़ी से फेरा प्रारम्भ किया था। इस प्रकार राज मुसा'रा तेरह मढ़ियों का चक्कर लगा कर प्रात: लगभग चार बजे अपनी मढ़ी में वापिस पहुंचता है। बाकी के बचे हुए मुसा'रे को वहां जलाया जाता है, अगले दिन प्रत्येक मढ़ी के लड़के अपने-अपने सरझाड़ के घर जाकर अनाज को बेचकर तथा कठोरे में इकत्रित किए पैसों का आपस में बंटवारा करते हैं। राजमढ़ी के लड़कों को पैसों के साथ साथ काटे गए मेंढे का मांस भी दिया जाता है। इस तरह समाप्त होता है यह महीने भर चला आ रहा कार्यक्रम अगले वर्ष के लिए।

यह पर्व अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ साथ राजाओं के समय का इतिहास और विचार प्रक्रिया भी लिए हुए है। हालांकि जहां भी लोहड़ी मनाई जाती है, उसके मनाने की प्रक्रिया लगभग एक समान है पर मुसा'रे वाली बात सिर्फ चम्बा में ही देखने को मिलती है। यहां की लोहड़ी शैव मत से प्रभावित है। सिद्ध योगी चरपट नाथ, चम्बा के संस्थापक राजा शैल वर्मन (९२०—९४० ई.) के राजगुरु थे। आज भी लगभग समस्त चम्बा क्षेत्र अैव परम्परा पर विश्वास रखता है। राजमढ़ी के प्रांगण में भगवान शिव का लिंग है और राज मुसा'रा भगवान शिव का प्रतीक माना जाता है। सात नर मढ़ियां लिंग और मादा मढ़िया योनि हैं। मुसा'रा डुबोने की प्रक्रिया इसका प्रमाण मानी जा सकती हैं। कुछ विद्वान इसे शिव और शक्ति का प्रतीक मानते हैं।

इसके अतिरिक्त राजशाही में सीमित आर्थिक साधनों के कारण दुश्मनों पर हमला करने और रोकने का प्रशिक्षण, मुसा'रे वाली प्रक्रिया से आसानी से हासिल किया जा सकता था। साथ ही यह पर्व लोगों को प्रफुल्लता प्रदान करने वाला मनोरंजन का सशक्त माध्यम भी था।

पर खेद की बात है कि आज यह पर्व दम तोड़ रहा है। न तो इसे कोई समुचित प्रोत्साहन मिल रहा है और न ही स्थानीय निवासियों का इस अनुष्ठान से पहले जितना संवेदनात्मक जुड़ाव रहा है। प्रत्येक मढ़ी के निवासी पहले मुसा'रे के साथ जाना अपना धर्म समझते थे, आज घर में सोना। धीरे-धीरे गल रही इस सांस्कृतिक थाती के कुछ अवैधानिक पक्षों पर रोक लगाकर इसे सुरक्षित रखना व प्रोत्साहित किया जाना अत्यावश्यक है। शोधकर्ताओं का मानना है कि यदि संस्कृति समाप्त हो जाए तो सभी कुछ नष्ट हो जाता है, यहां तक कि मानव-अस्तित्व भी।

शांता विला, ढींगरा एस्टेट,
बालूगंज, शिमला १७१००५
हिमाचल प्रदेश।

✍ यात्रा वृत्त

बीकानेर में दो दिन

चेत राम गर्ग

रातीघाटी राष्ट्रीय न्यास बीकानेर, राजस्थान प्रांत की ओर से फाल्गुन शुक्ल ८, कलियुगाब्द ५११२ तदनुसार १३ मार्च, २०११ को राष्ट्रीय सम्मान समारोह का आयोजन राजा बीका की नगरी बीकानेर में हुआ। इस बार डॉक्टर विद्याचन्द ठाकुर जी को सम्मानित किया गया। वैसे तो सम्मान समारोह ६ मास पूर्व हो जाना था, परन्तु डॉक्टर विद्याचन्द ठाकुर जी की व्यस्तता के कारण यह कार्यक्रम आगे बढ़ा। डॉ. विद्याचन्द हिमाचल प्रदेश भाषा एवं संस्कृति विभाग में उपनिदेशक के पद से ३१ जनवरी, २०११ को सेवानिवृत्त हुए हैं। विभाग में एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन कार्य इन्होंने अपने हाथ में लिया था— 'हिमाचल प्रदेश के नाम स्थान'। यह कार्य वे अपनी सेवानिवृत्ति से पूर्व पूरा करना चाहते थे। इस कार्य के लिए इन्होंने हिमाचल भाषा अकादमी के सचिव पद (प्रतिनियुक्ति) को भी त्याग दिया और अपने अध्ययन कार्य को महत्त्वपूर्ण मानकर सेवानिवृत्ति से पूर्व इस कार्य को पूरा किया, इसके उपरान्त ही इस सम्मान प्राप्ति के लिए इन्होंने अपनी सहमति दी।

जानकीनारायण श्रीमाली जो रातीघाटी न्यास के महामन्त्री हैं, उन्होंने मुझे तथा अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय सचिव राम प्रकाश, शर्मा जो श्री शेर सिंह नाम से प्रसिद्ध है, को भी इस कार्यक्रम पर बुलाया था। इतिहास दिवाकर के वर्ष प्रतिपदा अंक की तैयारी के निमित्त डॉ. विद्याचन्द जी को नेरी आना था, इस कारण यह योजना बनी कि हम नेरी से चण्डीगढ़ जाएंगे और चण्डीगढ़ से शेरसिंह जी और उनकी पत्नी हमें मिलने वाले थे।

मार्च मास में सांझ-सवेरा हिमाचल में अभी ठण्डा ही चल रहा था। बीकानेर के बारे में हम पहले से ही सचेत थे कि वहां मौसम गर्म होने वाला है। हम बीकानेर के हिसाब से चले। चण्डीगढ़ से बीकानेर की यात्रा बहुत ही आनन्ददायक है। संयोगवश हमें ठीक समय और मौसम पर वहां जाने का अवसर मिला। हमीरपुर से हम चण्डीगढ़ तक बस द्वारा पहुंचे तथा रात्रि कालका-बाड़मेर रेल सेवा द्वारा हम बीकानेर पहुंचे। ट्रेन के चलने और पहुंचने का समय सुविधाजनक था। रात्रि १०.३० बजे बैठने पर हम दूसरी दिन ११ बजे बीकानेर पहुंच गए। सफेद धोती और कुर्ते में जानकी नारायण श्रीमाली जी तथा राजपरिवार के सदस्य इंजिनियर नरेन्द्र सिंह बीका हमें रेलवे स्टेशन पर लेने के लिए आए हुए थे। साथ ही रेलवे स्टेशन पर एक सड़क पार करने पर भव्य धर्मशाला में हमारे रहने की व्यवस्था की हुई थी। डॉ. विद्या चन्द ठाकुर तथा शेर सिंह दोनों ही चाय के शौकीन ठहरे। मुश्किल से रास्ते में एक स्टेशन पर चाय की व्यवस्था थी। चाय वाला एक और चाय चाहने वाले सैंकड़ों। जैसे कैसे मैंने उन्हें चाय लाकर दी थी। यहां पहुंचकर उनकी चाय की तलब बढ़ गई। बीकानेर में चाय का रिवाज अधिक नहीं है। चाय आई तो प्लास्टिक की थैली में। यह मेरे लिए तथा

डॉ. विद्या चन्द के लिए भी पहला अनुभव था। प्लास्टिक की थैली में चाय आई पर चाय गर्म थी। हमने बड़े चाव के साथ चाय पी। तीन बजे कार्यक्रम स्थल पर पहुंचना था और उससे पूर्व भोजन भी करना था। भोजन हमारा श्रीमाली जी के घर पर ही था। श्रीमाली का संयुक्त परिवार जिसमें उनके तीन बेटे तथा स्वयं रहते है। सभी शिक्षा विभाग तथा लेखन कार्य से जुड़े हुए हैं। डॉ. चक्रवर्ती श्रीमाली आंग्ल भाषा के प्राध्यापक हैं। वही हमें अपनी कार में अपने घर ले जाने को आए। श्रीमाली का घर बीकानेर के उस भाग में है जहां पर बीकानेर की प्रसिद्ध हवेलियां हैं। ये हवेलियां नक्काशी तथा कला सौन्दर्य में अद्‌भुत हैं। जानकी श्रीमाली का बीकानेर के साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान हैं। बीकानेर में कोई भी साहित्यिक गोष्ठी हो अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रम उसमें श्रीमाली का शामिल होना लगभग निश्चित रहता है। इनके घर का परिवेष भी साहित्य एवं संस्कृति से पूर्ण है। धरती पर चौकड़ी लगा कर हमने भोजन किया। भोजन के साथ भुझिया खाना यहां अच्छा माना जाता है। भोजन करने के पश्चात हम पुनः धर्मशाला में आ गए। हम वहां से जल्दी ही कार्यक्रम स्थल श्री धनीनाथ पंच मन्दिर में पहुंच गए। हमारे पहुंचने के पहले की कार्यक्रम स्थल का प्रांगण भर गया था।

बीकानेर शहर के साथ में राती घाटी एक ऐतिहासिक युद्ध क्षेत्र रहा है। बीकानेर के संस्थापक राजा बीका के बाद नरोजी और लूणकरण ने यहां आसन किया। लूणकरण के पश्चात् राव जैतसी बीकानेर का राजा बना। उनके शासन काल में बाबा का छोटा बेटा कामरां जो हुमायूं से अधिक प्रवीण था ने लाहौर में अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित किया था। वह भारत पर शासन की इच्छा से मजबूत सैन्य बल के साथ अनेक क्षेत्रों को हराता हुआ, बीकानेर के समीप आ पहुंचा। राव जैतसी ने कामरां का सामना करने की रणनीति पर विचार विमर्श किया और कामरां की सेना के सामने अपनी सैन्य शक्ति को बहुत कम पाया। अतः उन्होंने एक नई रणनीति बनाई। उस नीति के अनुसार बीकानेर का शहर खाली कर के लोग समीप के घने जंगल में भेज दिए। पशुओं को भी जंगल में ले गए। उन्होंने पशुओं के सींग के साथ मशालें बांधी। जब कामरां की सेना ने बीकानेर में प्रवेश किया तो शहर को खाली पार कर उन्होंने सोचा कि राव जेतसी ने डर कर शहर छोड़ दिया है। कामरां की सेना वहां रूक कर रात को आराम से सोई हुई थी। तब राव जेतसिंह की सेना ने पशुओं के सिर में बांधी मशालों को जलाया और उन्हें हांक कर सेना के आगे चला कर कामरां की सेना पर हमला कर दिया। शत्रु सेना लाचार थी। कामरां तो किसी तरह जान बचा कर भाग निकला, लेकिन उसकी सेना तहस-नहस कर दी गई जहां पर यह युद्ध हुआ, वहां सब ओर रक्त ही रक्त हो गया। इसी रक्त से भरी रक्तिम घाटी को लोक भाषा में राती घाटी कहा गया। यहां रक्तिम से ही राती अब्द की व्युत्पत्ति हुई है। इस प्रकार राती घाटी युद्ध भारत की युद्ध नीति का एक अनूठा उदाहरण है जो भारत के सैन्य कौशल का गौरवशाली इतिहास है। विदेशी तथा भारत के छद्‌म धर्मनिरपेताक्षवादी इतिहासकारों ने इतिहास लेखन में इस युद्ध की जानबूझ कर उपेक्षा की है, क्योंकि इसमें हिन्दू सैन्य कौशल का गुणगान होना था जो इन्हें कहां रास आता ? इस ऐतिहासिक सत्य को प्रमाण सहित प्रकाश में लाने का कार्य राती घाटी राष्ट्रीय न्यास मंच ने किया है। राती घाटी युद्ध की ऐतिहासिक गौरवशाली विजय विक्रमी सम्वत् १५९१ में मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि तदनुसार २४ अक्तूबर, १५३४ को प्राप्त हुई है।

राती घाटी न्यास मंच पिछले २१ वर्षों से संस्कृति तथा इतिहास के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने वाले व्यक्तियों को सम्मानित करता आ रहा है। एक सादे तथा गरिमापूर्ण भव्य कार्यक्रम में इस बार डॉ. विद्या चन्द ठाकुर को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में अनेक शिक्षाविद, सेवानिवृत् सेना अधिकारी तथा महिलाओं ने भाग लिया। डॉ. विद्या चन्द ठाकुर ने यहां अपने सम्बोधन में राजस्थान को शक्ति और भक्ति का अद्‌भुत संगम बतलाते हुए कहा कि यहां की वीरांगना पद्‌मिनी, भक्ति की प्रतिमूर्ति मीराबाई तथा पन्ना धाय जैसी त्याग की देवी को सारा भारत स्मरण करता है। राजस्थान शौर्य गाथा का जीता जागता स्वरूप है। महाराणा प्रताप जैसे भारत माता के सपूतों ने यहां जन्म लिया जिन्होंने विदेशी आक्रान्ताओं से अन्तिम सांस तक संघर्ष किया। राजस्थान की वीर माताएं अपने पुत्र की अच्छी आयु १८ से २५ वर्ष ही मानती थी क्योंकि यहां युद्धों का एक लम्बा इतिहास रहा है तथा यहां के वीरों ने सदा भारत का स्वाभिमान उन्नत किया है। इस पुण्य भूमि और वीरभूमि को प्रत्येक भारतवासी नमन करता है। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के आद्य संचालक स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह जी के भारतीय इतिहास चिन्तन के राष्ट्रव्यापी योगदान को स्मरण करते हुए यहां सम्मान में मिली राशि नेरी शोध संस्थान की त्रैमासिक पत्रिका इतिहास दिवाकर को भेंट की।

इस अवसर पर जानकीनारायण श्रीमाली की पुस्तक 'म्हां झुंक्यां हिमालो झुक जावे' का लोकार्पण किया गया। पुस्तक की समीक्षा में बीकानेर के प्रसिद्ध विद्वान भवानीशंकर व्यास 'विनाद' ने कहा कि इस पुस्तक में इतिहस, कला, संस्कृति, दर्शन और शौर्य सभी समाहित है। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि ले.ज. चिमन सिंह ने कहा कि राती घाटी यद्ध को विद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए जिससे इस गौरवशाली इतिहास की जानकारी सब को हो। स्वामी विशोकानन्द भारती ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि भारत की इतिहास परम्परा पूरे विश्व को प्रकाश प्रदान करती रही है। भारत के इतिहास को विदेशी दृष्टि से नहीं, भारत की समृद्ध ऋषि परम्परा की दृष्टि से देखना होगा जिसके लिए संस्कृत भाषा एवं शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक है। श्री जानकीनारायण श्रीमाली ने अपने सम्बोधन में कहा कि भारत की रक्षा में देशवासियों ने प्राण न्यौछावर किए हैं, तभी देश का अस्तित्त्व बचा है। राती घाटी युद्ध देश के लिए मर मिटने वाले देश भक्तों के बलिदान का प्रेरक इतिहास है।

आज का रात्रि भोज नरेन्द्र सिंह बीका के घर पर था। बीका जी व्यवसाय से तो इंजिनियर रहे हैं पर उनकी इतिहास के प्रति अगाध रूचि है। इन्होंने अपने अतिथि कक्ष में इतिहास के वे चित्र संजोंकर रखें हैं जिससे इतिहास की दुर्लभ जानकारी मिलती है। सर्वप्रथम हमने उन चित्रों का ही अवलोकन किया तो बीकानेर का इतिहास आंखों के सामने जीवन्त हुआ।

बीका नरेन्द्र सिंह ने एक ऐसा चित्र अपने अतिथि कक्ष में लगाया है जिसमें भारत के विभिन्न राजाओं द्वारा युद्ध काल में प्रयुक्त अस्त्र-शस्त्रों को दर्शाया गया है। उन अस्त्र अस्त्रों के नाम भी उसमें लिखित है। उस की फोटो कापी उन्होंने नेरी शोध संस्थान के लिए भेंट की। उन्होंने प्राचीन वंशावली तथा इतिहास की पुस्तकें भी दिखाईं। ये पुस्तकें प्राचीन राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित हैं। बीका जी ने बताया कि उनकी इतिहास के प्रति रूचि कैसे बढ़ी? यह एक रोचक घटना है और विचारणीय भी। एक बार वे किसी शासकीय कार्य से राजस्थान भाषा सचिव के पास

गए। उन्होंने किसी पुस्तक का वर्णन किया। भाषा सचिव ने कहा, ''हमारे लोगों में अपने इतिहास को जानने की इच्छा नहीं है। यदि इच्छा होती तो सरकार इतिहास की जिन पुस्तकों को छपाती है, उन्हें कीड़े न खाते। यही बात बीका ने ध्यान में रखी और उनका इतिहास के प्रति रूझान बढ़ा। इतिहास का अध्ययन करते-करते उन्हें लगा इतिहास के बिना देश और समाज का कोई अस्तित्त्व नहीं है। यह बात समझ में आई तो इतिहास के प्रति रूचि स्थायी रूप से गहरा गई।

चूहों वाली माता के दर्शन

१४ मार्च, २०११ को हमारे पास बीकानेर तथा उसके आस-पास भ्रमण करते का समय था। बीकानेर जाएं और बीकानेर से २८ किलो मीटर दूर माता करणी के दर्शन न करें तो यात्रा में अधूरापन ही रहेगा। डॉ. विद्या चन्द जी ने तो वर्ष १९८६ में एक सरकारी प्रवास में माता करणी के दर्शन किये थे परन्तु आज भी उनमें दर्शन की उत्सुकता थी। डॉ. चक्रवर्ती श्रीमाली जिनके साथ हमने करणी माता के पास जाना था, के पास दस बजे तक का समय था, क्योंकि १०.०० बजे महाविद्यालय में पहुंचना होता है। इसलिए प्रातः नहा धो कर हम आठ बजे करणी माता मन्दिर के लिए प्रस्थान कर गए। डॉ. चक्रवर्ती को बीकानेर की बहुत जानकारी है। इस कारण पूरे मार्ग में हमें यहां की भिन्न-भिन्न प्रकार की जानकारी देते रहे। उन्होंने बताया कि करणी माता मन्दिर में जिधर देखो उधर चूहे ही नजर आते हैं। मेरे मन में चूहों वाली माता के दर्शन का विशेष कौतूहल पैदा होता जा रहा था। डॉ. चक्रवर्ती ने बताया कि करणी माता चारण समुदाय की एक तपस्विनी थी जिनकी इतिहास कथा इस प्रकार प्रचलित है...

राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र के सुवाप गांव में चारण समुदाय के किनिया वंश में मेहा नामक चारण के घर उसकी पत्नी देवला की कोख से पांच पुत्रियों ने जन्म लिया, लेकिन उनका कोई पुत्र पैदा नहीं हुआ। यह परिवार हिंगलाज भगवती का परम उपासक था। हिंगलाज भगवती का मूल स्थान अखण्ड भारत के एक भाग वर्तमान पाकिस्तान में हिंगुला नाम की नदी के किनारे हिंगला क्षेत्र में है। यह स्थान इक्यावन शक्ति पीठों में एक है, जहां पर कि भगवती सती के शरीर का ब्रहन्रन्ध्र गिरा है। मेहा चारण एक बार परिवार जनों के साथ पुत्र प्राप्ति की कामना से मारबाड़ से हिंगलाज भवानी के पावन स्थान पर पहुंचा। वहां हिंगलाज भवानी ने आशीर्वाद दिया कि वह स्वयं उनके घर में जन्म लेगी। मेहा और देवला ने सोचा कि उनके घर हिंगलाज भवानी पुत्र रूप में आएगी, लेकिन उनकी अगली सन्तान भी पुत्री ही पैदा हुई। इस कन्या की बुआ ने जब इसे देखा तो उसने मुट्ठी बन्द कर के कहा कि अब फिर पत्थर ही हो गया। ऐसा कहने पर उसकी मुट्ठी बन्द की बन्द ही रह गई। मेहा की इस पुत्री का नाम ऋद्धि रखा गया। ऋद्धि जब बड़ी हुई तो उसने एक दिन बुआ से कहा कि उनके हाथ को क्या हो गया है? बुआ ने ऋद्धि को सारी घटना बतलाई। ऋद्धि ने बुआ की मुट्ठी खोली और उसका हाथ सामान्य रूप से गतिशील हो गया। इस प्रकार हाथ ठीक हो जाने पर बुआ ने कहा कि यह कन्या अपनी करणी (कार्यशक्ति) से सब का कल्याण करेगी। तब से बुआ उसे करणी ही कहती थी। इसी आधार पर ऋद्धि का करणी नाम प्रचलित हुआ और आगे उसका यही नाम प्रसिद्ध हो गया। करणी माता ने अपनी दिव्य शक्ति से अनेक अलौकिक कार्य सहजता से सम्पन्न किए। करणी माता की कृपा से मेहा के घर एक अन्य पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम गुलाबाबाई रखा गया।

सुवाप के समीप के एक गांव साठी में केलु के पुत्र देपाजी से करणी का विवाह हुआ। बाद में यह परिवार साठी से जांगलु में आ बसा। कुछ समय के पश्चात् कलियुगाब्द ४५२१ एवं विक्रमी संवत् १४७६ तदनुसार ईस्वी सन् १४१९ के वैशाख मास, शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन हिंगलाज भवानी की अवतारिणी करणी माता ने दशनोक की स्थापना की। बीकानेर के सुविख्यात विद्वान डॉ. महावीर प्रसाद सारस्वत ने करणीचरितामृतम् नामक पुस्तक की रचना की है। इस पुस्तक में देशनोक की महिमा का बखान करते हुए देशनोक के नामकरण की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है–

नाकेति लोके किल नासिकार्थो
देशस्य नासा खलु देशनाकः।
स एव शब्दो विकृतिं प्रपन्नः
उच्चार्यते सम्प्रति देशनोकः।।

अर्थात् नाक शब्द लोक में नासिका अर्थ में प्रयुक्त होता है। यही स्थान देश की नासिका, देशनाक है। यही देशनाक शब्द स्थानीय लोगों के उच्चारण में विकृत हो कर देशनोक के रूप में उच्चारित होने लगा। बीकानेर में आ स्वर को ओ के रूप में बोलने की प्रवृत्ति रही है, जैसे कि यहां पानी को पोनी भी कहा जाता है, वैसे ही नाक को नोक बन गया है। अतः नासिका के तात्पर्य अर्थ के रूप में यह स्थान अपनी विशिष्ट गुणशीलता से क्षेत्र विशेष का मान–सम्मान एवं गौरवशाली अस्मिता के कारण देशनोक कहलाता है।

देशनोक में माता करणी ने वदरी (बेर) का वन विकसित किया और इस बदरी वन में धार्मिक दृष्टि से लकड़ी काटने का पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया। आज तक इस वन में लकड़ी नहीं काटी जाती। केवल सूखी, गिरी हुई लकड़ी ही लोग प्रयोग में लाते हैं। इस आज्ञा का उल्लंघन होने पर भगवती करणी के प्रकोप का भय रहता है। देशनोक की भांति देवी देवताओं द्वारा संरक्षित वन हिमालय क्षेत्र के अनेक स्थानों में सुरक्षित पाए जाते हैं। वन एवं पर्यावरण संरक्षण में इस प्रकार का सांस्कृतिक योगदान अनुपम है। प्रायः देखा जाता है कि शासन और प्रशासन के इस दिशा में किए जा प्रयास सफल नहीं हो पा रहे हैं।

विक्रमी संवत् १५११ में करणी माता के पति देपाजी का देहान्त हो गया। करणी माता की बहन गुलाबाबाई देपाजी की दूसरी पत्नी थी। विक्रमी संवत् १५२४ कार्तिक पूर्णिमा के दिन कपिल मुनि के मन्दिर स्थल कलायत के पवित्र सरोवर में स्नान करते हुए गुलाबाबाई के सब से छोटे पुत्र लक्ष्मण की मृत्यु हो गई। गुलाबाबाई ने उसे करणी माता के चरणों में लाकर रख दिया। करणी माता की असीम कृपा से लक्ष्मण तीन दिन में जीवित हो उठा। इस अवसर पर परमपिता परमात्मा से वरदान प्राप्त कर के करणी माता ने व्यवस्था स्थापित की कि जब तक करणी माता जीवित है, तब तक चारण समुदाय में कोई मृत्यु नहीं होगी। उनकी मृत्यु के पश्चात् चारण यमराज के पास नहीं जाएंगे। वे चूहे का जन्म ले कर करणी माता के चरणों में रहेंगे और कर्म फल भोग कर चारणों के घर में पुनः जन्म लेंगे। विक्रमी संवत् १५९५ को १५० वर्ष की आयु में चैत्र शुक्ल नवमी, रामनवमी के दिन करणी माता ब्रह्मलीन हुई। भक्तों ने देशनोक में हिंगलाज माता की अवतारिणी करणी माता का मन्दिर बनाया। तब से चारण लोग मरने पर चूहे बन कर करणी माता के मन्दिर में आते हैं। इन

चूहों को यहां काबा कहते हैं। कहते हैं कि यहां कुछ सफेद रंग के काबा भी हैं जो किसी पुण्यशील को ही दर्शन देते हैं। सामान्यत: सफेद काबा नहीं दीखता।

सौभाग्य से हमने उस समय करणी माता मन्दिर में प्रवेश किया जब माता की पूजा अर्चना चल रही थी। हमें भी उस पूजा में पूरा समय रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पूजा करते समय माता की मूर्ति के आस-पास व ऊपर-नीचे चूहे राजा अपनी उछल कूद मचाने में व्यस्त थे। इनसे बहुत आनन्दानुभूति होती है। चूहों पर कोई बाज जैसे पक्षी अपना शिकार न करें, इसके लिए मन्दिर के ऊपर पूरे परिसर को जाली से बन्द किया गया है। चूहों के निर्बाध आने-जाने के लिए दीवारों में छिद्र बने हुए हैं।

मन्दिर में यह ध्यान विशेष रूप से रखना होता है कि चूहे पांव के नीचे न आ जाएं। इसके लिए पांव को सरका कर आगे बढ़ना होता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि चूहे जमीन खोद कर जमीन के भीतर घुसते हैं लेकिन काबा का स्वभाव भूमि खनन का नहीं है। परीक्षण से यह भी सिद्ध हुआ कि ये चूहे प्लेग नहीं फैलाते। कुछ वर्षों पहले विश्व में चूहों से प्लेग का रोग बहुत बड़े स्तर पर फैला था अलौकिक आश्चर्य कि यहां कभी प्लेग का रोग नहीं होता।

श्री लक्ष्मी नाथ का राज्य

राजस्थान के जोधपुर नगर को राजा जोधा ने बसाया है। राजा जोधा के एक राजकुमार का नाम बीका था इसी राजकुमार ने करणी माता से आशीर्वाद लेकर अपने अलग राज्य की स्थापना की। उन्हीं के नाम से राज्य मुख्यालय बीकानेर का नामकरण हुआ है और यही नाम इसके राज्य के लिए भी प्रचलित है। विक्रमी संवत् १५४२ में उन्होंने यहां एक सौभाग दीप नामक दुर्ग की नींव करणी माता के करकमलों द्वारा रखी गई। इस दुर्ग की प्रतिष्ठा विक्रमी सम्वत् १५४५ में वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को शनिवार के दिन हुई। यह दुर्ग राज्य का दीपक होने से सौभाग्य दीप कहलाया जो लोक भाषा में सौभाग दीप नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी दुर्ग के बीच बीकानेर राज्य के प्रमुख देवता श्री लक्ष्मीनाथ जी का मन्दिर है।

करणी माता मन्दिर से लौट कर हम श्रीजानकीनारायण श्रीमाली के साथ सौभाग दीप के श्री लक्ष्मीनाथ मन्दिर गए। बीकानेर का राज्य का आसन राजा बीका ने श्री लक्ष्मीनाथ जी को समर्पित किया ओर स्वयं उनके प्रतिनिधि रूप में राज्य का संचालन किया। इसका अनुपालन यहां के बाद के राजा भी करते रहे। इसीलिए यहां की राज आज्ञाओं में लिखा रहता था—***राज लिखमीनाथ रो***। भगवान् लक्ष्मीनाथ को ही यहां स्थानीय भाषा में लिखमीनाथ कहते हैं। देव समर्पित राज्य संचालन भारतवर्ष के अनेक मन्दिरों में है जो भारतीय संस्कृति में प्रगाढ़ देव आस्था की अभिव्यक्ति है। लक्ष्मीनाथ मन्दिर की भव्यता आकर्षक है। इसके साथ श्री माता चामुण्डा, गणपति और शिव के दर्शनीय मन्दिर हैं। साथ में ही यहां जैन मन्दिर है जो कलात्मक स्थापत्य शिल्प के लिए बहुत प्रसिद्ध है।

यहां से आ कर हमने धर्मशाला में विश्राम किया और सायं ४ बजे की रेल गाड़ी से बीकानेर की ऐतिहासिक पुण्य धरा से श्रद्धापूर्वक नमन कर के विदाई ली।

शोध संस्थान नेरी,
हमीरपुर, हि.प्र.

✍ गतिविधियां

करसोग जनपद के सांस्कृतिक इतिहास पर दो दिवसीय संगोष्ठी

ऐतिहासिक नगरी करसोग के सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास पर राजकीय महाविद्यालय करसोग में शोध संस्थान नेरी, इग्नू एवं महाविद्यालय के इतिहास विभाग के संयुक्त तत्वधान में कलियुगाब्द ५११३, पौष अमावस्या, शुक्ल प्रतिपदा तदुनसार २४-२५ दिसम्बर, २०११ को दो दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस संगोष्ठी में ३० विद्वानों ने भाग लिया तथा १५ शोध पत्र पढ़े गये। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि शोध संस्थान नेरी के निदेशक वैचारिक पक्ष डॉ. विद्याचन्द ठाकुर ने विद्वानों का स्वागत करते हुए कहा कि भारतीय इतिहास की मूल भावना हमारे लोक में विद्यमान है परन्तु, यह लोक हमारी सनातन परम्परा से भिन्न नहीं है। लोक में स्थानीय विशेषताओं के साथ मूलत: भारतीय इतिहास और चिन्तन प्रवाह निरन्तर प्रवाहित है। विदेशी आक्रान्ताओं ने हमारी संस्कृति और इतिहास को ही तोड़-मरोड़ कर पेश किया है। जब तक हम अपने सांस्कृतिक भारत को नहीं समझेंगे तब तक हम अपनी भावी पीढ़ी को कुछ देने में अक्षम ही रहेंगे। भारत में इतिहास की परम्परा विदेशी चिन्तन से भिन्न रही है। इस प्रकार की संगोष्ठी का आयोजन हमारे वास्तविक इतिहास को समाज के सामने लाने में सहायक होगी।

संगोष्ठी के संयोजक डॉ. भागचन्द चौहान ने ममेल मन्दिर के इतिहास पर अपना पत्र प्रस्तुत किया। प्रो. विक्रम भारद्वाज ने ऊपरी शिमला के मन्दिरों के वास्तु शास्त्र पर, डॉ. दायकराम वर्मा ने महासू देवता पर, प्रो. मनोज करसोग जनपद में पर्यटन की संभावनाएं, डॉ. सेवक राम शास्त्री, तथा तन्त्र विद्या के विद्वान वंसी राम शर्मा ने कामाक्षा माता के इतिहास पर अपने शोध पत्र पढ़े। श्री सुन्दर लाल शास्त्री ने शंकर देहरा शिव मन्दिर पर शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

नेरी शोध संस्थान के लेखक प्रमुख डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने ऋषि परम्परा पर प्रकाश डाला और कहा कि इसके लिए हमें कालगणना और ऋषि परम्परा को समझना आवश्यक है। श्री जयराम वर्मा, मनेन्द्र पाल वैद्य, पंकज गुप्ता, निधि कपूर गुप्ता, डॉ सावित्रि ठाकुर, श्री मती सीमा बंट्टा, सुश्री रीता चौहान, श्री कुलभुषण शर्मा, श्री महेन्द्र कुमार, श्री ए डी शर्मा, तथा विद्या निधि आर्य ने भाग लिया।

कार्यक्रम के समापन में मुख्य अतिथि माहूनाग के मुख्य पुजारी ने पुजारियों की वंशावलियों का विस्तार से वर्णन किया। सभी विद्वानों को इस संगोष्ठी में मम्लेश्वर महादेव की मूर्ति स्मृति के रूप में प्रदान कर सम्मानित किया गया। अध्यक्षीय भाषण देते हुए शोध संस्थान नेरी के प्रबन्धक श्री चेतराम ने विद्वानों का आवाहन किया कि हमें इतिहास के उन अनछुए पृष्ठों को समाज के सामने लाने के लिए प्रतिबद्ध होना होगा जिससे कि अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ता हो।

भारत की मूल प्रकृति धर्म है। हमारा जीवन धर्म आधारित है। हमें उन सब बातों का अध्ययन एवं चिंतन करना होगा जो अपने समाज को मजबूत करती है।

चौहदवाँ डा. विष्णुधर वाकणकर पुरस्कार

विख्यात पुरातत्वविद् प्रो. वी.एच. सोनवणे को चौहदवाँ ''डॉ. वाकणकर राष्ट्रीय पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया। डॉ० वाकणकर राष्ट्रीय पुरस्कार बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति दिल्ली प्रति वर्ष इतिहास, पुरातत्त्व आदि क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने के लिए प्रदान किया जाता है। इस वर्ष पौष कृष्ण ३, कलियुगाब्द ५११३ (दिसम्बर १३, सन् २०११) को सायं ६ बजे, टैक्निया इन्स्टीच्यूट सभागार, मधुबन चौक, (रोहणी) में एक भव्य समारोह में प्रो० सोनवणे जी को ५१ हजार का चैक, प्रशस्ति पत्र एवं शाल भेंट कर माननीय भैया जी जोशी ने सम्मानित किया।

प्रो. सोनवणे एक प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् हैं जिन्होंने सर्वप्रथम ''आर्कियोलॉजी ऑफ द पंच महल'' पर शोध कार्य किया। डॉ. विष्णुधर वाकणकर के मार्ग दर्शन में ही प्रो. सोनवणे ने गुजरात राज्य में शैल चित्रों की खोज की थी।

इसके उपरान्त आपने चन्द्रवती, जो अरबुद मंडल के परमार राजाओं की राजधानी थी, से उच्च पुरापाषाणकाल का एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य (उत्कीर्ण पाषाण खंड) खोज निकाला था। इन शैल चित्रों की खोज के आधार पर ही स्वर्गीय डॉ. वाकणकर को शैल चित्रों के काल निर्धारण में सहायता प्राप्त हुई थी। प्रो. सोनवणे जी राष्ट्रीय स्तर पर अपने उत्कृष्ट कार्यों के लिए अनेक मंचो पर सम्मानित हो चुके हैं।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह माननीय भैया जी जोशी ने प्रो. सोनवणे को सम्मानित करते हुए कहा कि विद्वानों को चाहिए कि वे युवा पीढ़ी के शोध को कार्य के लिए प्रेरित करें। भारत का जो गलत इतिहास पढ़ाया जा रहा है उस सारे को बदलने की आवश्यकता है।

देश को आजाद हुए ६४ वर्ष हो गए हैं फिर भी भारत की युवा पीढ़ी भारत के वास्तविक इतिहास से अनभिज्ञ है। देश के महानायकों, शौर्य गाथाओं व कारनामों की जानकारियों से वंचित है। बाबा साहेब आपटे भारतीय इतिहास के चिन्तक थे। उन्होंने न केवल भारतीय चिन्तकों एवं विद्वानों को दिशा देने का काम किया है बल्कि उन्होंने उन मूलभूत सिद्धान्तों पर भी चर्चा की जो भारतीय इतिहास पर हावी हो रहे थे। भैया जी ने कहा कि हमें भारतीय इतिहास के मूल विषय पर ध्यान देना चाहिए और विद्वानों को इस कार्य के लिए आगे आना चाहिए।

संस्कृति में उत्कृष्ट कार्य के लिए चरण दास शास्त्री का सम्मान

बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति पंजाब ने शास्त्री चरण दास शास्त्री को पंजाब में संस्कृत के उत्थान एवं प्रचार प्रसार के क्षेत्र में किये गये उल्लेखनीय कार्य के लिए, रेडक्रास भवन जालन्धर में पौष शुक्ल द्वादशी कलियुगाब्द ५११३ (६ जनवरी, २०१२) को एक भव्य समारोह में सम्मानित

किया। सम्मान स्वरूप उन्हें ५१ हजार का चैक, प्रशस्ति पत्र तथा शाल भेंट की गई। कार्यक्रम में मुख्य वक्ता माननीय इन्द्रेश कुमार जी तथा अध्यक्ष गुरु रविदास आयुर्वेद विश्व विद्यालय के उपकुलापति डॉ. ओम प्रकाश उपाध्याय जी रहे।

डॉ. ओमप्रकाश उपाध्याय जी ने अपना अध्यक्षीय भाषण धारा प्रवाह संस्कृत में दिया और कहा कि संस्कृत भाषा जैसी कोई दूसरी भाषा नहीं है। हमें दृढ़ संकल्प से इसके उत्थान में लगना चाहिए। यह समाज में एक भ्रम पैदा किया गया है कि संस्कृत एक कठिन भाषा है और इसे सीखना मुश्किल है। संस्कृत सब भाषाओं की जननी है।

मुख्य वक्ता माननीय इन्द्रेश जी ने संस्कृत के उत्थान के साथ–साथ आज हिन्दू विचार पर हो रहे प्रहारों की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया और कहा कि देश की वर्तमान सरकार ऐसे हिन्दू विरोधी विधेयक ला रही है, जिससे अपने ही समाज में विभेद खड़े हो जाएं और समाज बिखरकर टुकड़े–टुकड़े में बंट जाए। उन्होंने साम्प्रदायिक हिंसा विरोधक विधेयक–२०११की खामियों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला।

Registration/Admission Open for Classes IV to X

Boy's Residential School, Co-Education for Day Scholars Only

A CULTURE ORIENTED ENGLISH MEDIUM SCHOOL

(Affiliated to C.B.S.E. Delhi)

Run By: Himachal Shiksha Samiti Shimla,

(A State unit of Vidya Bharti)

S.S.N.

PUBLIC SCHOOL

KUMARHATTI

LOCATION: The complex is situated on Barog bye-pass Road. It is less than 2 Km. from KUMARHATTI.

Managed By:
Jindal Charitable Trust
Nabha (Panjab)
01765-326661

J.K. Sharma
Principal
Ph. : 01792-266410, 94185-58030
e-mail: ssnkumarhatti@yahoo.in

" I enjoy going to school...
I love to play in the park...
There is drinking water and electricity in my house...
The village has an approach road...
There is a hospital nearby...

Future looks promising and inviting

Thank you SJVN"

SJVN as a responsible Corporate Citizen is taking utmost care in Resettlement and Rehabilitation of its Project Affected Families (PAFs) and also of all the people in vicinity of its projects.

• Mobile Health Vans • Income Generation Schemes • Merit Scholarships • Rural Sports

एसजेवीएन लिमिटेड
(भारत सरकार एवं हिमाचल प्रदेश सरकार का संयुक्त उपक्रम)
मिनी रत्न एवं शेड्यूल 'ए' सार्वजनिक उपक्रम

SJVN LIMITED
(A Joint Vanture of Govt. of India & Govt. of Himachal Pradesh)
A Mini Ratna & Schedule 'A' Company

Powering India... Empowering People

Target and achievement upto the month of Dec. 2011 in r/o Dev. Block Jhandutta Distt. Bilaspur (H.P.)

SGSY-2011-12

Opening Balance	Rec. During the Year	Total Funds Available	Credit Disbursed to			Subsidy disbursed to			Total Beneficiaries
			SHGs	Individual	Total	SHGs	Individual	Total	
14.97	32.14	48.385	48.665	11.395	60.06	11.60	2.375	13.975	122+23=145

IAY - 2011-12

Opening Balance	Rec. During the Year	Total Funds Available	Exp.	Bal. Fund	Target		Achievement		House Under Construction	
					S. Ovr.	Curr.	S. Ovr.	Curr.	S. Ovr.	Curr.
0.13	16.73	16.86	16.85	0.01	17	92	5	42	12	50

AAY - 2011-12

Opening Balance	Rec. During the Year	Total Funds Available	Exp.	Bal. Fund	Target		Achievement		House Under Construction	
					S. Ovr.	Curr.	S. Ovr.	Curr.	S. Ovr.	Curr.
2.445	23.28	25.725	9.428	16.297	10	48	6	23	4	25

NFBS - 2011-12

Opening Balance	Rec. During the Year	Total Funds Available	Exp.	Bal. Fund	Target	Achievement	Remarks
---	3.90	3.90	3.90	---	39	39	---

MNREGA-UPTO Dec. 2011

Cumulative No. of HH Issued Job Card	Cumulative No. of HH Demanded Employment	Cumulative No. of HH Provided Employment	Cumulative Person days Garneted	Cumulative No. of HH Completed 100 Days	No. of Bank Account Opened	No. of Post Office Account Opened
14767	2337	2337	78307	51	4696	43

Opening Balance	Receipt	Interest	Total	Expenditure	Total works Taken up	Total works Completed	Works in Progress
134.753	150.00	---	284.753	163.62	563	274	289

Block Development Officer
Dev. Block Jhandutta

Sh. Prem Kumar Dhumal

HIMUDA

Sh. Mahender Singh

PROVIDING SHELTER TO ALL

Under the Dynamic Leadership of

PROF. PREM KUMAR DHUMAL

Chief Minster, Himachal Pradesh

and

the motivating force of

Shri Mahender Singh Thakur

Minster for Transport, Housing and Town & Country Planning

with

able guidance of

Shri Ganesh Dutt

Vice Chairman, HIMUDA

HIMUDA solves the Housing Problems of the people of Himachal Pradesh

Sh. Ganesh Dutt

Stepping Stones to Success

1. New **Housing Colonies** are being setup at **Shimla, Solan, Kandaghat, Parwanoo, Baddi, Nalagarh, Chamba, Kala Amb, Theog and Paonta Sahib**.
2. The work on Residential Township Madhala (Baddi) already started.
3. **Commercial complexes** are being setup at Baddi & Rohroo.
4. **Atal Shiksha Kunj (Education Hub)** spread over an area of 600 bighas is being developed at Kalu Jhanda (Baddi).
5. **HIMUDA** has successfully completed major Deposit Works of various Govt/Semi Govt. organizations.

NEW SCHEMES:

1. For JNNURM under Ashiana Scheme, 384 units have been approved under BSUP to be allotted to Slum/B.P.L. families of urban poor with beneficiary contribution of Rs.25,000/-.
2. 2252 units have been approved in Hamirpur, Solan, Baddi, Parwanoo, Nalagarh and Dharamsala Towns to be allotted to Slum/BPL families of urban poor with beneficiary contribution of Rs.25,000/-.
3. Funding of 3.04 crore approved for purchase of 75 Buses under Mission City Shimla

CEO-cum-Secretary
HIMUDA, Shimla-171002

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण हमीरपुर

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना

जिला हमीरपुर में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना को कार्यान्वयन वर्ष 2008 से किया जा रहा है । योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के रोजगार के इच्छुक परिवारो को एक वित वर्ष में 100 दिन का गारण्टीशुदा रोजगार उपलब्ध करवाना है, ताकि ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की स्थिति को और बेहतर बनाया जा सके। वर्ष 2011–12 में दिनांक 27.01.2012 तक इस योजना के अर्न्तगत 1380.18 लाख रूपये व्यय करके 825498 श्रम दिवसों का रोजगार जिला हमीरपुर के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को उपलबध करवाया गया । जिला में लगभग 78363 परिवारों को इस योजना के अर्न्तगत पंजीकरण किया गया है और उन्हें रोजगार कार्ड उपलब्ध करवाये गये हैं ।

इस वर्ष 3485 कार्य आरम्भ किये गये जिन में से 963 कार्य पूर्ण किये जा चुके हैं तथा 2522 कार्य प्रगति पर हैं ।

योजना के अर्न्तगत विभिन्न विभागों जैसे लोक निर्माण विभाग सिंचाई एंव जन स्वास्थ्य वन विभाग तथा उद्यान विभाग को भी ग्रामीण क्षेत्रों में योजना के कार्यान्वयन का दायित्व दिया गया है । वर्ष 2011.12 मे अब तक इन विभागों द्वारा कार्यान्वित की जा रही योजनाओं के लिए 249.65 लाख रूपये खण्ड विकास अधिकारियों के माध्यम से उपलब्ध करवाये गए हैं। अन्य विभागों द्वारा किये जा रहे कार्यों पर अभी तक 133.32 लाख रूपये व्यय किये गये है ।

इस योजना के अन्तर्गत रोजगार प्राप्त करने वाले इच्छुक व्यक्ति अधिक जानकारी के लिए ग्राम पंचायत अथवा खण्ड विकास अधिकारी या जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के कार्यालय से सर्म्पक कर सकते हैं ।

उपायुक्त एंव जिला कार्यकम समन्वयक(मनरेगा)
जिला ग्रामीण विकास अभिकरण ,हमीरपुर,हि0प्र0